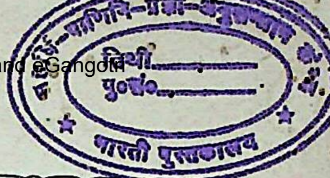


हिन्दी-प्रभा

चतुश्शती-मानसांक

संवत सोलह सौ इकतीसा।
करौं कथा हरिपद धरि सीसा॥



गो० तुलसीदास जी

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, अस चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सों सुत होय॥

'हिन्दी-प्रभा'

मानसांक की विषय-सूची

मानसांक का दातव्य मूल्य एक रुपया



।। ॐ तमसो मा ज्योतिर्गमय ।।

'हिन्दी-प्रभा'

वार्षिकी, मानस
अभिमन्यु-पुस्तकालय, वाराणसी चतुश्शती विशेषांक

वर्ष ८ } श्री रामनवमी सं० २०३१ वि० { अंक ८

तुलसी सूक्ति-सुधा

शंभु-प्रसाद, सुमति हिय हुलसी ।
रामचरित-मानस-कवि, तुलसो ।।

राम-नाम—मणि--दीपधरु, जीह—देहरी—द्वार ।
तुलसी भीतर-बाहिरहु, जो चाहसि उँजियार ।।

तुलसी 'रा' के कहत हो, निकरत पाप-पहार ।
पुनि आवै पावत नहीं, देत मकार, किवार ।।

तुलसो बिरवा बाग में, सींचत कै कुम्हिलाय ।
कृपा भई रघुनाथ की, पर्वत पै हरियाय ।।

तुलसी पंछी के पिये, सरिता घटै न नीर ।
धर्म किए धन ना घटै, जो सहाय रघुवीर ।



'हिन्दी-प्रभा' का मानसांक

सम्पादक—

सर्वश्री पं० जगन्नारायणदेव शर्मा
'कविपुष्कर' शास्त्री, व्यास
,, गयादीन त्रिपाठी
,, देवी प्रसाद मिश्र (जयन्त)
गंगाराम 'तरुण'

परामर्शदाता—

श्री पं० कृष्ण मोहन ठाकुर
,, देवीनारायण वकील
,, बनारसीलाल 'आर्य'
,, वासुदेव प्रसाद मेहरोत्रा
,, बालकृष्ण जोशी 'दर्शन'
,, कलाकार (सोमनाथ आर्य)

प्रकाशक मंत्री—

श्री मौजी राम पाण्डेय
अभिमन्यु-पुस्तकालय
डी ४५/१९५ ए. गुरुबाग, वाराणसी



रामायणकी उत्पत्ति और रचना

[श्री देवीनारायण एडवोकेट विद्यासागर]

मा निषाद ! प्रतिष्ठास्त्वसगमः
शाश्वतो समाः ।
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधीः
काममोहितम् ।।

एक समय ब्रह्मर्षि बाल्मीकि स्नान के लिए तमसानदी के तट पर जा रहे थे। मार्ग में, एक बहेलिए ने क्रौंच पक्षी के जोड़े में से एक को मार गिराया। यह देखकर उनका हृदय करुणा से भर गया और उनके मुख से उपर्युक्त श्लोक निकला। 'शोकः श्लोकत्वमागतः' अर्थात् उनका शोक ही श्लोक रूप में परिणत हो गया।

वाल्मीकि जी चिन्तामग्न हो रहे थे कि उनको कमलासन ब्रह्मा जी ने दर्शन दिया और कहा कि यह संस्कृतसाहित्य का प्रथम श्लोक आप के मुखसे प्रकट हुआ है। अतः आप ही संसार के आदिकवि होंगे। अब आप इसी छन्द से श्री राम जी का यश-वर्णन करें। यह आदेशकर ब्रह्मा जी तो अन्तर्ध्यान हो गये और वाल्मीकिजी उसी समय से अपने आश्रम में बैठकर रामायण की रचना में संलग्न हो गये।

वास्तव में उसी बाल्मीकि-रामायण के आधारपर विभिन्न भाषाओं में, यत्र-तत्र सर्वत्र कालान्तर में अनेक रामायणों की रचना होती आ रही है। आजसे ४०० वर्ष हो रहे हैं कि सन्तशिरोमणि गोस्वामी तुलसी दास जो कि वाल्मीकि के ही अवतार माने जाते हैं -- जिनके विषय में कहा गया है 'कलि कुटिल जीव निस्तारहित, बालमीकि तुलसी भयो' उन्होंने तुलसी कृत रामायण को हिन्दी - भाषा में रचना की और अपने ग्रन्थ का नाम 'श्री रामचरित-मानस' रखा।

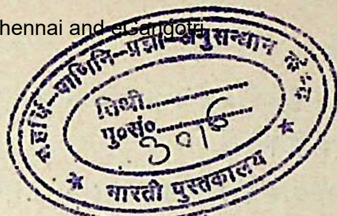
इस वर्ष भारत ही नहीं, वरन् संसार के अनेक देशों में इस परमपवित्र

एवं लोकप्रिय ग्रंथ की चतुः शताब्दी मनाई जा रही है। इस पर व्याख्यान हो रहे हैं—इसकी कथाएँ कही जा रही हैं-इसके शोध चल रहें हैं एवं इस पर नाटक खेले जा रहे हैं।

'मानस' ऐसा सर्व प्रिय ग्रन्थ है कि इसके अनुवाद अनेक देशी-विदेशी भाषाओं और बोलियों में भी हो चुके हैं। फारसी-उर्दू के विद्वानों ने भी इसे हृदय खोल कर अपनाया है। इसका संस्कृतपद्यों में भी अनुवाद हो गया है। भारत में तो ऐसा कोई नगर या ग्राम नहीं जहाँ के लोग 'मानस' से परिचित न हों। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मानस को प्रति-एक राज महल से लेकर दीन की झोपड़ी में भी प्राप्त होती हैं।'मानस'तो हिन्दू घरोंमें अपने प्रकाश से स्त्री पुरुष-बालक वृद्ध सभी का मार्ग प्रदर्शन करता है। धन्य है श्री रामचरित-मानस और धन्य हैं इसके रचयिता—महात्मा तुलसीदास ! अतः ऐसे मानस और मानसकार की व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से पूजा और वन्दना होनी चाहिए जिनके सम्पर्क से अवश्य लोककल्याण होगा !

बड़े शुभ अवसर पर 'हिन्दी-प्रभा' का विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। इसके लिए सभी कार्यकर्त्ताओं को हार्दिक बधाई तथा सफलता के लिए शुभकामना है !

रामायन सुरतरु की छाया ।
दुःख भा दूर निकट जो आया ॥



श्रीरामचरित मानस में जटायु-भक्ति की विशेषता

[पं० जयकान्त झा]

श्री रामचरित मानसके अरण्य काण्डान्तर्गत श्री सीतान्वेषण-प्रसंग में गृध्रराज श्री जटायु का मिलना इस प्रकार वर्णित है :—

पूरनकाम राम सुख रासी।
मनुज चरित कर अज अविनासी॥
आगे परा गीधपति देखा।
सुमिरत रामचरन जिन्ह रेखा॥
कर सरोज सिर परसेउ
कृपा सिंधु रघुबीर।
निरखि राम छवि धाम मुख
विगत भई सब पीर॥

'आप्तकाम सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीरघुनाथजी मनुष्यलीला की मर्यादा में श्रीसीताजी को खोजते हुए पंचवटी से दक्षिण के वनों में प्रवेश करते चले जा रहे थे कि उन्होंने आगे श्रीजटायु-जी को पंख कटी हुई अवस्था में पृथ्वी पर पड़े और निज (राम) चरणों की रेखाओं (अड़तालीस चिन्हों) को स्मरण करते हुए देखा। देखते ही कृपा के समुद्र श्रीरघुवीर जी ने अपने कर-कमलों को गृध्रराजजीके सौभाग्यशाली सिर पर फेर दिया। भगवान् के कर-कमलों का स्पर्श होते ही और श्रीराम जीके छबिधाम मनोजमनहर मुखार-विन्द का दर्शन मिलते ही भक्तराज जटायु जी की सारी व्यथा मिट गयी।'

श्री रामचरितमानस में यों तो श्री रघुनाथ जी के चरणाश्रित बहुत-से भक्तों का उल्लेख मिलता है, किन्तु चरणों की रेखा का स्मरण (ध्यान) केवल जटायुजीके ही सम्बन्धमें दिया गया है। इसलिये मानसप्रेमी श्रद्धालु भक्तोंकी यह जिज्ञासा स्वाभाविक है कि गृध्रराजजीको रखाओंके ध्यानका संस्कार किस सद्गुरुके द्वार और कब प्राप्त हुआ था, जिसको वे इस मरणासन्न अवस्थामें भी पड़े-पड़े स्मरण कर रहे थे, एवं वह संस्कारकर्त्ता सद्-गुरु भी ऐसा ही सिद्ध होना चाहिए, जो भगवान् श्रीरामके चरणोंकी रेखा-ओंको ही इष्ट और अवलम्ब मानकर

स्वयं भी उनके ध्यानकी निष्ठावाला रहा हो।

श्रीसीताहरण-प्रसंगका विचार करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जगज्जननी श्रीसीतामाताके इष्ट उनके उस वियोगकालमें श्री रघुनाथजीके चरण-चिह्न ही थे। इसका स्पष्ट प्रमाण मानसके निम्नलिखित दोहोंमें मिलता है : -

जेहि विधि कपट कुरंग सँग,
धाई चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर,
रटति रहति हरिनाम॥
(अरण्यकाण्ड दोहा २९)

निज पद नयन दियें मन,
राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत,
देखि जानकी दीन॥
[सुन्दरकाण्ड दोहा ८]

अर्थात् जिस प्रकार कपट-मृगके पीछे श्रीरघुनाथजी 'धाइ' (दौड़कर) चले, 'सो छवि' (उसी छबिको) श्रीसोताजीने हृदयमें धारण किया। वह छवि क्या थी ? वह निश्चय ही श्रीरामजीके चरणतलोंकी रेखाओंका साक्षात्कार था, क्योंकि जब श्रीराम जी मृगके पीछे-पीछे कुटियासे 'धाइ' (दौड़कर) चले, तब भगवान्का मुख मारोचको ओर और पृष्ठभाग कुटिया अथवा श्रीसीताजीकी ओर था। यहाँ पर यदि 'सो छवि' का अर्थ 'मुखारविन्दकी छवि' किया जाय, तो वह तो उस 'धाइ' (दौड़कर) चलनेके समय श्रीजानकीजीके सामने नहीं था। इधर तो भगवान्के पृष्ठका ही दर्शन हो रहा था। हाँ, प्रभुके पद-कमल ज्यों-ज्यों ऊपर उठते थे, त्यों-त्यों पीछेकी ओरसे उनके तलवोंकी छवि भलीभाँति दिखायी देती थी—जिनमें अड़तालीस अनुपम शुभ रेखाएँ (चौवीस दायें और चौबीस बायेंमें) विराजमान थीं। उसी चरणकी रेखा छविको' जिसका ठीक वियोग होनेके समय सामना और लक्ष्य करनेका संयोग मिला था, श्रीसीताजी अपने उरमें दृढ़ रूपसे धारण करके रामनामका रटन कर रही थीं–

सो छबि सीता राखि उर,
रटति रहति हरिनाम॥

श्रीजयरामदासजी 'दीन' रामायणीने अत्यन्त सुन्दर ढंगसे भगवान्के पदकमलोंके चिह्नोंका इस प्रकार वर्णन किया है :—

पदाम्बुज रामजीमें रेख
अड़तालिस विराजे हैं।

पुरुष माला छत्र यमदण्ड
सिंहासन चँवर वो चक्र ।।
मुकुट अंकुश पताका कल्प-
तरु वो स्वस्ति साजे हैं ।।१।।
अष्टभुज वो स्वयं श्री बाण
हल मूसल सर्प अम्बर ।
पद्म रथ वज्र जब वो उर्ध
दाँये पदमें भ्राजे हैं ।।२।।
चन्द्रिका हंस भाथा धनुष
वंशी वीण पूरणचन्द्र ।
मीन त्रिबली सुधाके कुंड
गोखुर भूमि राजे हैं ।।३।।
कलश ध्वज जम्बुफल
अन्र्वेदुदर षटकोण तिरकोना ।
गदा जिव विन्दु श्रीसरयू ऊर्ध
बायें में छाजे हैं ।।४।।
दास जयराम निसि वासर
हैं इन चिह्नोंके शरणागत ।
प्रणतपालक बिरद जिनके
सकल श्रुतियों में गाजे हैं ।।५।।

अब सुन्दरकान्ड दोहा ८ के प्रथम चरणपर ध्यान दीजिये—''निज पद नयन दिए मन,राम पद कमल लीन ।' अर्थात् श्री सीता जी की आखें योग, दृष्टिकी भाँति नीचे अपने पैरोंकी ही ओर लगी थी और 'मन' श्रीरामजीके चरणोंमें लीन था। तात्पर्य यह कि श्री सीतामाता उन सम्पूर्ण चरणचिह्नों को, जिनका उन्हें मृगके पीछे दौड़ते समय श्रीरामजीके तलवोंके उठनेसे साक्षात्कार हुआ था, हृदयसे स्मरण कर रही थीं ।

यह स्मरणीय है कि जो चौबीस चिह्न श्रीरामजीके दायें पदतलमें थे, वे ही श्री सीताजीके बायें और जो चौबीस चिह्न श्रीरामजीके बायें पदतलमें विराजमान थे वे दायेंमें थी । अतएव उन्हीं अड़तालीसों चिन्होंको श्रीसीताजी अपने चरणोंमें ठीक-ठीक देख रही थीं और फिर उन्हीं चिन्होंका श्रीरामजीके चरणोंमें ध्यान करके मनसे उनका स्मरण कर रही थीं। इसी कारण दोहेमें 'निज पद नयन दिए मन, राम पद कमल लीन' कहा गया है । 'निज पद' पर 'नयन' दिये रहनेसे उन चिन्होंके रूपका दर्शन हो रहा था— इससे 'कायिक भक्ति' मन' चरण-चिन्होंमें लीन हो रहा था—इससे 'मानसिक भक्ति' तथा 'वचन' रामनाम की रटनमें लगा हुआ था—इससे 'वाचिक भक्ति' सिद्ध होनेके साथ-साथ मन, वचन और कर्म--तीनों श्री प्रभुमें

ही लग रहे थे, जैसा कि स्वयं माता सीताने भी हनुमान्‌जीसे कहा था—

मन क्रम वचन चरन अनुरागी।
केहि अपराध नाथ हौं त्यागी।।

इसी सम्बन्धमें श्री मुखके वचन भी हैं—

वचन कायँ मन मम गति जाही।
सपनेहुँ विपति कि बूझिअ ताही।।

श्री अम्बा सीताजीके सच्चे सेवक श्री जटायुजीकी भी ठीक वही स्थिति हो रही थी। सेवामें शरीर अर्पण करके पंख कटी हुई अवस्थामें पड़े थे (कायिक भक्ति), मनसे श्रीरामचरण रेखाका स्मरण कर रहे थे (मानसिक भक्ति) और वाणीसे श्री रामनामका रटन हो रहा था (वाचिक भक्ति)। इस प्रकार भक्तराज जटायुजीके भी मन, वचन और शरीर—तीनों ही भगवानको अर्पण हो चुके थे।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि श्री सीताजी जिस प्रकार रामनामका रटन (विलाप) करती हुई जा रही थीं ('विलपति अति कुररी की नाईं' तथा 'राम राम हा राम पुकारी') उसी नाम रटनको गृध्रराजने भी अपना गुरुमन्त्र बना लिया। यह भी उसी महामन्त्रको जप रहे थे। साथ ही श्री रामजीकी चरण-रेखाओंका ध्यान जिस प्रकार श्री अम्बाजीको हो रहा था, उसी प्रकार गृध्रराजजीके हृदय में भी हो रहा था—'सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा।'

निश्चय ही गुरु और शिष्य दोनों ही मन, वचन और शरीरमें तदाकार पाये जाते हैं। सच्ची लगन और निष्कपट सेवाका फल भी यही है। अतः गृध्रराज जटायुजीको भी उनकी निःस्वार्थ और निष्कपट सेवाके प्रताप से जो श्री सीता स्वामिनीकी अनु-कूलता प्राप्त थी, उसके कारण इन्हें भी चरणरेखाका ध्यान प्राप्त हुआ था–जो उन्हींके प्रति निकले हुए स्वयं मुखके वचनों द्वारा प्रमाणित हो रहा है—

जल भरि नयन कहहिं रघुराई।
तात कर्म निज तें गति पाई।।
परहित बस जिन्हके मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं।।
तनु तजि तात जाहु मम धामा।
देउँ काह तुम्ह पूरन कामा।।
(अरण्यकाण्ड दोहा ३१)

श्री रघुनाथजी चाहते थे कि जटायुजी कुछ काल तक अपने अनुपम जीवन से लोक को कृतार्थ करें—शरोर न छोड़ें। परन्तु उनका उत्तर कैसा अद्भुत और प्रगाढ़ भक्तिभाव एवं विशुद्ध विज्ञान से युक्त था एवं असार संसार के प्रति वैराग्य का द्योतक था—

राम कहा तनु राखहु ताता।
मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता।।
जाकर नाम मरत मुख आवा।
अधमउ मुकुत होइ श्रुतिगावा।।
सो मम लोचन गोचर आगे।
राखौं देह नाथ केहि खाँगे।।
(अरण्यकाण्ड दोहा ३१)

यद्यपि यह लोकप्रसिद्ध नीति है कि 'देह प्रानते प्रिय कछु नाहीं' परन्तु जिन महाभागों को श्रीरामचरण कमलोंकी लगन है, उनकी यही दृढ़ धारणा रहती है —

गुनागार संसार दुख
रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरनसरोज प्रिय
तिन्ह कहुँ देह न गेह।।

फिर भक्तराज जटायुजी तो राम-भक्तोंके एक स्तम्भ हैं, इन्हें 'देह-गेह' की ममता कैसी ? इनकी निष्ठा तो इनके अनुपम कर्त्तव्यसे ही स्पष्ट हो रही है—

प्रान प्रान के जीव के,
जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह
जिन्हहि तिन्हहि विधि बाम।।

उनके इसी संवादको श्री गोस्वामीजोने रामगीतावलीमें यों लिखा है —

राघौ गीध गोद करि लीन्हों।
नयन सरोज सनेह सलिल सुचि
मनहूँ अरघजल दीन्हो ।।
× × × ×
बहु विधि राम कह्यौ तन
राखन परमधीर नहिं डोल्यो।
रोकि प्रेम अवलोकि बदन
बिधु वचन मनोहर बोल्यो।।
'तुलसी' प्रभु झूठे जीवन लगि
समय न धोखो लैहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ
तुमहि कहाँ पुनि पैहौं ? आदि

(रामगीतावली अरण्यकाण्ड, पद १४)

श्री रघुनाथजीने गृध्रराजको आज्ञा दी कि 'दिव्य देह' 'इच्छा जीवन' आदि जो कुछ चाहे, माँग लें, किन्तु उन्होंने निवेदन किया कि मेरी इस

मृत्युके बराबर (जैसे मैं साक्षात् श्री भगवान्‌की गोदमें लेटकर उन्हींके कमल-नेत्रोंके करुणाश्रुओंसे स्नान और उनके ही श्रीमुखारविन्दका दर्शन करता हुआ तथा उनके ही श्रीमुख से अमृत-वचन सुनता हुआ शरीर त्याग रहा हूँ, इसको समानतामें) चारों फल (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तुलते हों, तो सरकार ही बतलावें, जिससे मैं जीवन धारण करूँ। श्री रघुनाथजी इस कथन को यथार्थ मानकर कि सचमुच जटायुकी इस मृत्युकी तुलना चारों फलोंसे नहीं की जा सकता और ऐसो अनुपम योगिजन दुर्लभ - मृत्यु न तो किसी को हुई, न आगे होगी, मौन हो गये और गृध्रराज का कथन स्वीकार कर लिया—"मौनं सम्मति-लक्षणम्।" इसी मृत्युकी सराहना श्री गोस्वामीजीने रामदोहावली में इस प्रकार की हैः—

प्रभुहि बिलोकत गोदगत
सिय हित घायल नीच।
तुलसी पाई गोधपति
मुकुति मनोहर मीच ॥ २२२ ॥
बिरत, करम रत, भगत, मुनि।
सिद्ध ऊँच अरु नीच।
तुलसी सकल सिहात सुनि,
गीधराज की मीच ॥ २२३ ॥
मुए, मरत, मरिहैं सकल,
घरी पहर के बीच।
लही न काहूँ आजु लौं,
गोधराज को मीच ॥ २२४ ॥
मुए मुकुत, जीवत मुकुत,
मुकुत मुकुतहूँ बीच।
तुलसी सबही तें अधिक,
गीधराज की मीच ॥ २२५ ॥

"गृध्रराज जटायुको धन्य है, जो सीताजीको छुड़ाने के लिये घायल हुए और नीच शरीर होनेपर भी प्रभु की गोद में उनके मधुर मुखारविन्द को निरखते हुए ही मुक्तिमयी मनोहर मृत्यु प्राप्त की। गृध्रराजकी ऐसी मृत्यु सुनकर विरक्त, कर्मकाण्डी, भक्त ज्ञानी, मुनि, सिद्ध, ऊँच और नीच-सभी उनसे ईर्ष्या करने लगे (मानो सबने चाहा कि हमारी भी ऐसी ही मृत्यु हो)। आजतक कितने मर गये, कितने मर रहे हैं और आगे घड़ी-पहर के अन्तरसे कितने मरेंगे, परन्तु जटायु की-सी मौत आजतक किसीको नहीं हुई। कोई मरने पर मुक्त होता है, कोई जीते ही मुक्त (जीवन्मुक्त) हो जाता है। मुक्त-मुक्तमें भी भेद

होता है परन्तु इन सारी मुक्तियों से भी जटायु की मृत्यु सबसे बढ़कर है।"

इस प्रकार परमधाम की यात्रा का निश्चय होते ही श्री सरकारको कृपा से गृध्रराज श्रीजटायुजी ने तत्काल ही भगवत्स्वरूप प्राप्त कर लिया और सजल नयनसे भगवान्‌की स्तुति करके श्री वकुण्ठधामके नित्य किङ्करोंमें जाकर निवास किया। पश्चात् श्री प्रभुने अपने करकमलोंसे ही उनका यथोचित संस्कार करके अपनी भक्तवत्सलताका परिचय दिया—

गीध देह तजि धरि हरि रूपा।
भूषन वहु पट पीत अनूपा॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी।
अस्तुति करत नयन भरि बारी॥

× × × ×

अविरल भगति मागि बर
गीध गयउ हरि धाम।
तेहि की क्रिया जथोचित
निज कर कीन्हीं राम॥

मानस (अरण्यकांडदोहा ३२।

मानस की यात्रा-दृष्टि

[पं० राम अकबाल पाण्डेय]

रामचरित मानस का समारोह देश देशान्तर में मनाया जा रहा है? बार बार सोचता हूँ, क्यों मनाया जा रहा है? समझ में नहीं आता। समाचार पत्रोंको देखने तथा मानस-गोष्ठियों में भाग लेने का अवसर भी मिला। मनाने वालों को भी देखा। इसी उधेड़बुन में पड़ा रहता हूँ कि कि मानस के पाठकों की आकृति पर अशान्ति एवम् निराशा की रेखायें ही क्यों उभर रही हैं? बात समझ में नहीं आती। मेरी दृष्टि मानस की अट्टालियों पर चली जाती है। राम-नाम सुन्दर करतारी है। इसकी ध्वनि मात्र से आत्मवृक्ष पर बैठा हुआ अज्ञान एवम् संशय रूप पक्षियों का समूह अपना नीड़ छोड़कर उजस जाता है। क्या गोस्वामीजी ने इसे योंही लिखा है? वे कर्मकाण्डी नहीं हैं। उन्होंने वाचन एवम् विस्तृत वक्तृता के लिए मानस की रचना भो नहीं किया है। कलिकाल में रोग-शोक-मोह ग्रस्त प्राणी शील एवम् संयम का परित्याग कर भोगोन्मुख हो गया था। उन्होंने इस महामोह निद्रा से जगाने के लिए रामचरित-मानस की प्रातः काली कढ़ाया था। युग के शैथिल्य को त्यागकर स्फूर्ति लाभ के लिए मानस-सरोवर का निर्माण किया था।

मानस अवगाहन के लिए श्रद्धा-विश्वास रम्य भवानी तथा शंकर को उसने प्रसन्न किया। इनको प्रसन्नतासे हृदयस्थ परमात्मा का दर्शन करके मानव राममय हो जाता है। मानस में सीता राम तथा रावण की एक विशेष यात्रा का वर्णन है। इनके अनुगामी एवम् प्रतिगामी आदर्शों का उल्लेख है। व्यक्ति इस सरोवर में अपना तप्त हृदय शान्त करता है।

जीवन पाता है। यह जीवन उसकी काया का नहीं, दृष्टि का होता है। अब वह सम्पूर्ण सृष्टि में सीता राम का ही दर्शन करता है। विरोधी भाव शान्त हो जाते हैं। अब कोई पराया नहीं रहता। विरोधो भावों के सुग-बुगाते ही वह सोचने लगता है केहिसन करउँ विरोध।

इस यात्रा में मुकुर की मलिनता तथा नेत्र हीनता प्राणिनात्र को रामरूप दर्शन का अनधिकारी बना देता है। भोग एवम् वासना से धूस-रित हृदय पर मासस का बिम्ब नहीं उभर सकता। यदि किसी प्रकार कुछ छाया पड़े भी तो नेत्र उसे देख नहीं! सकते। ऐसा ही व्यक्ति मानसकार को दृष्टि में दीन है। आजका बुद्धिजीवो वर्ग अपनेको दीन संज्ञासे सम्बोधित करनेवाले सन्तके प्रति आक्रोशी बन जाय तो कोई असम्भव बात नहीं परन्तु तथ्य यह है कि कोई अपनी दीनता स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं है। वास्तविकता से हम अपनेको उतनी ही देर तक दूर रख सकते हैं जबतक हमें उसकी अनिवार्यता नहीं है। आवश्यकता उसे पथशोधके लिए वाध्य कर देती है।

मानस आत्मदृष्ट ग्रन्थ है। इसकी घटनाएँ संसारसे अधिक स्पष्ट अन्तरमें देखी जा सकती हैं। अतः चक्षुके साथ-साथ अन्तरर्चक्षुकी भी आवश्यकता है। प्रारम्भकी एक चौपाईसे ही इसकी कुंजी निहित है। नित्यबोध-स्वरूप गुरुके पद-नखमणि हैं। उनसे निकलने वाला प्रकाश नित्य एवम् व्याप्त है। इसके स्मरण मात्रसे हृदयस्थ दिव्य-दृष्टि खुल जाती है। इसप्रकाशमें सर्व-प्रथम पाठक रामजन्मके अनेक रहस्यों का दर्शन करता है। उसे बोध हो जाता है। इस यात्रामें प्रस्थान एवम् गन्तव्य-दोनों बिन्दु परस्पर परिवर्तित हो जाते हैं।

अयोध्या एवम् लंका दो महा-नगरोंके राजकुमार एवम् राजाकी अपूर्व नियोजित यात्रामें पड़नेवाले कतिपय विश्राम स्वरूप हैं। उनस्थानों से सम्बन्धित पर्यावरण और मनोभाव हैं। कार्य व्यापार हैं, पाठक इनका अन्तदर्शन करता है। अयोध्या त्याग-मय आनन्द और लंका भोगरोगग्रस्त

सुख है। अयोध्यामें यदि किसी प्रकार का आनन्द उतरता है तो व्यक्ति उसे बाँटनेमें विह्वल हो जाता है। उसे परिजन-पुरजन जड़चेतन सबमें बिखेर कर गद्-गद् हो जाता है। इस व्यवस्थामें रंचमात्र व्यवधान उपस्थित होनेपर वह दुखी हो जाता है। रावणका सुख ग्रहणमें है। यहाँ त्यागके दुःख-आक्रोश ईर्ष्या और द्वेप उत्पन्न होता है। रावण सुखका अनुभव ग्रहणमें करता है। प्रेत, पितर, गन्धर्व, दिक्, काल सभी उस प्राणोपासकके वशीभूत हैं। कोई भी उसकी अवज्ञा नहीं कर सकता। अयोध्या आत्मस्थ प्रबुद्ध परमात्माका ऐश्वर्य धाम है। यहाँ अन्तस्थ इन्द्रियाँ सहजरीतिसे आत्मानुशासन स्वीकार कर लेती हैं। वहाँ आत्मसम्बन्ध विहीन इन्द्रियाँ मनोन्मुखी होकर दिनरात भोगासक्त रहती हैं। ये दोनों राजकुमार एवम् राजा अपनी अपनी यात्रा प्रारंभ करते हैं।

राम स्वभावसे त्यागी हैं। आनन्द उनके पैरों पर लोटा करता है। वास्तविक आनन्द का कर्म यही है। आकांक्षाहीन हो जानेपर सभी आकांक्षाएं पूरी हो जाती हैं। वही वास्तविक आनन्द है। यहाँ जीव आत्मस्थ बन जाता है सभी उसकी आत्मा सबको आत्मसात कर लेती है। इस आत्मस्थिति की परीक्षामें रामसे सब कुछ छीन जाता है। पंचवटी तक जाते जाते उनकी प्रिया भी अपहृत हो जाती है। घोर संघर्षकी भयग्रस्त परिस्थिति में उनका समर्थक मनस्तत्व लक्ष्मण भी मूर्च्छित हो जाता है। लंकामें भी रामने आनन्दविरोधी तत्वों का ही निराकरण किया है।

रावण भोगकी राजधानी लंका का स्वामी है। प्रवृत्ति की सभी शक्तियाँ अनुचरी हैं। उसे देश एवं कालकी विभिन्न इकाइयोंमें ही भोग की अनुभूति होती है। अपनी भोग पिपासा शान्त करनेके लिए बनवासिनी सीताका अपहरण करनेमें भी नहीं हिचकता। विभीषण और मन्दोदरी की मानसिक व्यवस्था भी उसे अस्वीकार्य है। उसकी असंयत्त इन्द्रियाँ मृत्युपर्यन्त उसे डँवाडोल किए रहती हैं। लोकोंका सम्पूर्ण वैभव अनुशाशित करके भी दुखी है। उसका भोगान्ध मन वास्तविकता अनुभव नहीं करने देता। अतः ब्रह्मानुभूतिके लिये

उसकी एक एक इन्द्रियाँ छिन्न कर दो जाती हैं। रामके अन्तिम बाणसे उसको बीजात्मा रामके प्रकाश में विलीन हो जाती है। सोनेकी पराजित लंका विभीषणका अभिषेकमें रामनगर सीमासे बाहर ही करते हैं।

इन दो महानगरोंके मध्य कई अन्य स्थान तथा वहाँ के निवासी हैं। इन सबका अपना अपना शब्दार्थ है। सुधीजन उनके मर्म को जानते हैं। लता, पादप वन्नने पर्वत, नदी, सागर, गृहस्थ तपस्वी का भी अपना एक निराला अभिप्राय है। ये सभी व्यक्ति की जीवनयात्रा के पड़ाव पर कहीं न कहीं अवश्य मिलते हैं। आत्मपथिक सद्गुरु के चरणों में एकाग्र होकर इन रहस्यों का दर्शन करता हुआ आत्मोन्नति करता है। सीताराम से परिपूर्ण यह विश्व उसे नित्य प्रणम्य हो ज़ाता हैं। आज की विषम स्थिति के समाधान में मानस की यात्रा मंगल प्रदायिनी होगी।



"तुलसी के राम एवं आधुनिक उपासना"

[श्री दर्शनानन्द शास्त्री, एम० ए०]

'रामचरिमानस' लिखने के पूर्व गोस्वामीं तुलसीदास जी ने अपने आराध्य देव 'राम' का ध्यान करते हुये लिखा है कि 'जो भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने वाले हैं; उन भगवान् श्री राम की मैं वन्दना करता करता हूँ।' मानसके अन्तर्गत 'राम' के प्रति गोस्वामी जी की कितनी असीम श्रद्धा थी—उनकी प्रारम्भिक वन्दना से स्पष्ट परिलक्षित होती है। उन्होंने राम को आत्मपरीक्षण द्वारा अपने अन्तःकरण में देखा। वे जानते थे कि 'तुलसी के राम' मात्र उन्हीं के नहीं थे, बल्कि उनको समस्त जगत् 'सकल राम-मय-सीय जग जानी' की कसौटी पर खरा उतरा। भक्त कवि, अपने हृदय की तपोभूमि में साधक की भांति मौन होकर अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता था, किन्तु उन्होंने अपने पीछे एक संतप्त एवं दुखित समाज को देखा। उनको श्री रामचन्द्र जी का वरदान प्राप्त हो चुका था—यही कारण था कि वे अपनी भक्ति की पात्रता पर विश्वास रखते थे, तभी तो उन्होंने संकेत कर लिखा है कि - 'अत्र रघुपति पद पंक रुह, हिय धरि पाय प्रसाद, तुलसी दास जी लघुता और प्रभुता के रहस्य को समझते थे। वे जानते थे कि अपूर्ण कभी भी 'पूर्ण' को प्राप्त नहीं करता हैं। इसीलिये उन्होंने सर्वत्र राम को देखा। जो सबके थे, वही थे—'तुलसी के राम' भक्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी का यह दृढ़ विश्वास था।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के चरित्र का अंकन बड़े ही सूक्ष्म ढंग से किया है। बालरूप की झांकी में सखी के माध्यम से 'अवलोकि हौं-सोच-विमोचन को—ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से"—ऐसा कहना कि मैं तो उस सकल शोकहारी बालक को देखकर ठगी सी रह गई—उसे देखकर

जो मोहित न हों–उन्हें धिक्कार है, भक्त कवि की विलक्षण प्रतिभा का प्रतीक है। गोस्वामी जी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि यदि मन में ऐसा वालक न वसा तो संसार में जीवित रहने से क्या लाभ है? राम का अद्भुत चरित्र योगियों के लिये 'ब्रह्म' एवं सर्व साधारण के लिये आदर्श का द्योतक है। गोस्वामी जी में समन्वय वाद को धारणा थी और यही कारण था कि राम के ऊँचे आदर्श राजमहलों से लेकर कोल-भीलों की झोपड़ियों से भी अछूते नहीं रहे। गोस्वामी जो उनके आदर्शों को वाल युवा एवं वृद्ध सभी के व्यवहार में उतारना चाहते थे किन्तु उस समय की सामाजिक स्थिति ठीक नहीं थी। हिन्दुत्व पर कठोर प्रहार हो रहा था। गोस्वामी जी ने समाज में भक्ति का स्रोत बहाया। राम की उपासना समस्त संसार में व्याप्त दुःखों को नष्ट करने वाली है–तुलसी का विश्वास अमर बन गया।

'राम' के चरित्र में माधुर्य, प्रताप ऐश्वर्य. प्रकृति एवं यश आदि के समस्त गुण विद्यमान थे। उनमें शौर्य, तेज, वल का प्रभाव था। झूठे प्रतापी बने हुये राजाओं तथा दरवार में व्यर्थ ही भुजायें ठोकने वालों (अभिमान के कारण) को नीचा दिखाना उनको अभीष्ठ था। धनुर्यज्ञ से यह सन्दर्भ स्पष्ट हो जाता है। राजाओं को मारने की उत्कृष्ट कीर्ति धारण करने वाले भृगुनायक परशुराम जी को अपने धनुष-वाण सौंपने पड़े। गोस्वामीजी ने लिखा है कि शिव जी का धनुष जहाज है, और राम जी को भुजाओं का वल समुद्र है वे सव समाज डूव गये जो मोहवश पहले चढ़े थे।' विश्वामित्र जो ने उनका परिचय देते हुये कहा था कि 'मेरे यज्ञ की रक्षा के लिये महाराज दशरथ ने इन्हें मेरे संग कर दिया था और इन्होंने ऐसे-ऐसे राक्षसों का नाश किया है—जो इन्द्र को जीतने वाले थे। अहल्या के पाप को नष्ट कर उसे तार दिया है। अव नरनाथ जनक के नेत्रों के अतिथि हुए हैं।"

वन-गमन के समय गोस्वामी जी ने लिखा है कि श्रीराम के अङ्गों ने राजोचित वस्त्रों और अलंकारों का त्याग करके अवर्णनीय शोभा प्राप्त

की। साथ में सुन्दर भाई और पवित्र प्रिया ऐसे मालूम होते हैं—मानों धर्म और क्रिया सुन्दर देह धारण किए हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि माया ब्रह्म और जीव लोक में मर्यादित ढंग से अवतरित हो गये हैं।

श्रीरामचन्द्रजी ने अपने स्वभाव से, मन, वचन एव कर्म से कैकेयी को माता ही माना, कभी विमाता नहीं समझा। जिसके नाम ने संसार रूपी अपार नदी में डूबते हुए अजामिल जैसे करोड़ों पापियों का उद्धार कर दिया और जिसके स्मरण-मात्र से सुमेरु के समान पर्वत पत्थर के कण के समान हो जाता था। 'तुलसी जेहि के पद पकज ते प्रकटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े' गोसाईं जी कहते हैं - "जिनके चरण-कमल से श्री गङ्गा नदी प्रकट हुई हैं; जो बड़े-बड़े पापों का नाश करने वाली हैं; वे समर्थ रामचन्द्र जी इस नदी को पार करने के लिए किनारे पर खड़े होकर नाव माँग रहे हैं।" मल्लाह ने कहा कि 'मैं तुम्हारा भेद जानता हूँ। आपके चरण-कमल की धूलि को सभी लोग 'मनुष्य बनाने वाली जड़ी' कहते हैं। मैं घर की स्त्री को कैसे समझाऊँगा? मुझको जीविका के लिए और कुछ अवलम्ब नहीं है। हे नाथ! बिना आपके चरण धोये, मैं नाव पर नहीं चढ़ाऊँगा। पत्थर की अपेक्षा तो यह काठ का जलयान कोमल है। यहाँ केवटने बड़ाही मर्मस्पर्शी वचन कहा—हे नाथ! मैं आपसे उतराई नहीं चाहता - आप भवसागर के मल्लाह - हम नदी पार करने के हैं। इसके बाद रघुनाथ जी ने कहा कि 'होत बिलम्ब उतारहु पारू' अर्थात् वही करो जिससे तुम्हारी नाव न जाय। गुह उतराई न चाहते हुयेभी उसने सबकुछ पा लिया। अन्त में श्रीरघुनाथ जी ने उज्ज्वल भक्ति-वर देकर उसको विदा किया।

वन के मार्ग में पत्नी की आतुरता पर्ण कुटी में विश्राम हेतु देख प्रियतम की अति मनोहर आँखों से जल बहने लगा। इस प्रकार रघुकुल रूपी कमलों के सूर्य श्रीरघुनाथ जी मार्ग के लोगों को सुख देते और वन-छटा देखते हुये जानकी-लक्ष्मण सहित चले जाते हैं। इस स्थल पर हास्य-रस का चित्रण सामने आता है—जब मुनि जनों में यह भाव 'ह्वै हैं सिला सब चन्द्रमुखी-

परसे पद मंजुल कंज तिहारे'—परिलक्षित होता है।

इस प्रकार श्री राम के पग-पग आगे बढ़ते जाने से समस्त प्राणियों में आनन्द की अनुभूति होती रही। पञ्चवटीकी सुन्दर पर्ण-कुटी के समीप स्वभाव से ही सुन्दर श्री रामचन्द्र जी बैठे हैं। साथ में प्रिया (श्री जानकी जी) और प्रिय वन्धु शोभित हैं। 'जबते आप रहे रघुनायक—तबते भी वन मंगलदायक' इस प्रकार वन मंगलदायक हो गया। समाज से विलग होकर रहने वालों के उद्धार हेतु-वन में उनका आना अनिवार्य था।

भातृत्व का इससे वड़ा उदाहरण क्या हो सकता है भरत जी वर मांगते हुये कहते हैं; 'अर्थ न धर्म न काम रुचि, गति न चहौं निर्वान, जन्म-जन्म रति राम-पद, यह वरदान न आन।' अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्षमें मेरी प्रीति नहीं है। केवल, वर की इच्छा है कि जन्म-जन्मान्तर राम के चरणों में प्रीति हो · दूसरा वर नहीं चाहता। राम के प्रति श्रद्धा रखने वाले भरत ने राजसुख की उपेक्षा उचित समझ कर वन में आकर दर्शन लाभ किया। भरत जी के गुण, शील, स्वभाव को देखते हुये श्री रघुनाथ जी ने यहाँ तक कह दिया कि—'जो न होत जग-जन्म भरत को, सकल धर्म-धुर धरणि धरतको।' यदि भरतजीका जगत् में जन्म न होता तो सब धर्मों को धुरी और पृथ्वी को कौन धारण करता?

'राम-परिचय' के सम्वन्ध में श्री हनुमान जी द्वारा (विप्र रूप में) पूछे गये प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। 'जग कारन तारन भवहिं, भंजन धरनी भार,—कि तुम अखिल भुवन-पति, लीन्ह मनुज अवतार।' गोस्वामीं जी ने राम द्वारा दिये गये उत्तर को बड़ीही कुशलतापूर्ण शैली में लिखा है 'नाम राम, लक्ष्मण दोउ भाई; संग नारि सुकुमारि सुहाई। यहाँ हरी निश्चर वैदेही; विप्र फिरहिं हम खोजत तेही।' इतना सुनकर महावीर जी का शरीर पुलकायमान हो गया तथा वोल उठे कि हे नाथ! जीव आपकी माया से मोहित है—आपकी कृपा से ही इसका निस्तार हो सकता है जवतक महावीर जी ब्राह्मण रूप में थे—श्री राम ने उनको अंकमें नहीं लिया- क्योंकि उनका रूप उस समय

कपट-वेश में था। जब वे अपने वास्तविक रूप (वानर में आये तब राम ने उठाकर उनको छाती से लगा लिया।

लंका—दहन रावण के कर्मों का प्रतिशोध था। राम के सामने सार्वभौमिक प्रश्न -सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय एवं धर्म-अधर्म की वास्तविकता को स्वीकार करने का था। राक्षसों को गति देकर उन्हें दिखाना था कि समाज में अधर्म अधिक दिनों तक टिक नहीं सकता। लंकेश के आदेश पर मेघों ने लंकापुरी को जल से शान्त करना चाहा किन्तु अग्नि और भी प्रज्वलित हो गई। यह अग्नि तो श्री रामचन्द्र जो का क्रोध था और वायु श्री जानकी जी का श्वास। रावण ने कहा था कि मेरे समान कौन शूर है ? जिसने अपने हाथ से सिर काटकर अनेक वार अग्निमें होम दिये—'इसके शिव भो साक्षी हैं।' इधर राम को अपने शौर्य का लेश-मात्र भी गर्व नहीं था वल्कि शील-सिन्धु श्री राम ने सम्यक् प्रकार से श्री हनुमान जो का उपकार माना।

पिता ने वनवास दिया, रावण जैसे शूर-वीर, (अभिमानी) जिसके द्वारा सोता जी का हरण हुवा, तो भी जिनकामुख मलिननहीं हुआ। वलशालो बालि को मारकर सुग्रीव की रक्षा को, विभीषण पर कृपा की और सेतु-स्थापन द्वारा समुद्र को लांघा, फिर जिनके घोर युद्ध को देखकर—शिव और ब्रह्मा भी हृदय में हार गये। वीर लक्ष्मण मूर्छित हुये—ऐसे शोक में भी जिन्होंने तीनों लोंको को पल-मात्र में विशोक कर दिया अर्थात् लक्ष्मण जी को सचेत और रावण को मारकर सबकी रक्षा की।

तुलसीदास के प्रभु 'राम' सभी को शरण देने वाले हैं। भगवान राम शोल के सागर गुणों के समुद्र और दीनों के बन्धु तथा दया के निधान हैं। वे ज्ञानियों में शिरोमणि तथा वचन और वाहुवल में शूर-वीर थे। उन्होंने गृद्ध का श्राद्ध किया, शवरी के फलों की प्रशंसा की। शिला वनी हुई अहल्या के श्राप का शमन किया। केवट, राक्षस, वानर एवं भालुओं को तारा और भीलों के साथ प्रेम निबाहा। जो नित्यों का नित्य और चैतन्यों का चैतन्य है—ऐसे साक्षात्

परब्रह्म 'राम' दशरथ के यहाँ अवतीर्ण हुये। गोस्वामी तुलसीदास जी ने माना है कि जिनका नाम रूपी कल्पवृक्ष चारों फलों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) का देने वाला है, जिसकी दृष्टि मात्र से मनुष्य लोकपाल हो जाता है, और देवता लोग सुन्दर शोक रहित स्थान को प्राप्त कर लेते हैं। गोसाईं जी कहते हैं कि ऐसे विष्णु रूप श्री रामचन्द्र जी के अतिरिक्त अन्य का आश्रय अपेक्षित नहीं है। 'भक्त हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप किया चरित पावन परम प्राकृत नर अनुरूप।' जो भक्तों को सर्व संकटों से मुक्त करने वाले हैं–ऐसे समर्थ 'तुलसी के राम' द्वारा मनुष्य रूप में की गई लीलायें, सम्पूर्ण जगत् में आज भी अमर हैं।

तुलसी के 'राम'की 'नररूप' कथा का संक्षिप्त परिचय तथा उनके आदर्शों की लघु व्याख्या करने के पश्चात् पाठक-वर्ग का ध्यान में 'आधुनिक उपासना' की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ। तुलसी ने अपने व्यक्तिगत जीवन को साहित्य-सेवा में उतरा। उन्हें इस बात का ध्यान था कि साहित्य, समाज का दर्पण होता है। सामाजिक स्थिति, सभ्यता और संस्कृति मनुष्य के व्यवहारों से समाज में स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। तुलसी ने 'राम' के आदर्शों की स्थापना समाज में करना चाहा क्योंकि मानव-कल्याण उनका संकल्प और दृढ़ लक्ष्य बन चुका था।

'आधुनिक उपासना'—आज के समाज में आडम्वर का प्रतीक बन गई है। प्रवचन और लम्वे चौड़े भाषणों से मानव-कल्याण संभव नहीं है। आदर्शों को व्यवहार में उतारना आवश्यक है। कुछ लोग समाज में व्यक्तिगत जीवन को एकाङ्गी मानकर मंच की ऊँचाई से–नीतियों और आदर्शों की दुहाई देते हैं। आज तो भोजन, भाषण और उद्घाटन का विशेष फैशन है। फिर ऐसे समाज का कौन सा साहित्य बने? साहित्यकारों के लिये आज का यह प्रश्न अत्यधिक जटिल और सिर दर्द है। "अंजामे गुलिश्तां क्या होगा - हर साख पै उल्लू बैठे हैं।" यहाँ मेरा उद्देश्य समाज-सेवियों को निराश करने का नही है—वल्कि उनसे मैं चाहता हूँ

कि वे कृपा करके बातें कम करें— काम अधिक। समाज तो उनकी मान्यताओं को अवश्य स्वीकार कर लेगा किन्तु उनको विश्वास नहीं है। समाज में अपने को अगुआ कहने वालों से मेरी प्राय. वार्ता होती रहती है—वे कुटिल कलियुग का हवाला देकर मुझे बहकाने का प्रयास करते हैं। हमें ऐसा आभास होता है कि उन्हें कर्म से पहले ही 'फल-प्राप्ति' की चिन्ता अधिक सताती रहती है। उनको तो व्यवहार और आदर्शों की धारा में बहना चाहिये जिससे युग की धारा भी बदली जा सकती है। साहित्य-कारों के लिये भी इस समस्या का समाधान करना बहुत ही आवश्यक है। मैं उनके 'आधुनिक साहित्य' पर आलोचना करना नहीं चाहता किन्तु उन्हें ऐसा साहित्य लिखना चाहिए—जिसके अनुसरण से मानव का कल्याण संभव है। साहित्यकारों की यह सबसे बड़ी 'आधुनिक-उपासना' हो सकती है।

आजकल व्यक्तिगत जीवन और परिवार ही 'आधुनिक उपासना' का केन्द्र बना हुआ है। भला कौन कहे, समाज और देश की बात। वर्णाश्रम का तो लोप हो हो गया है। शुद्ध अन्न से-विचार और बुद्धि को बल मिलता है। खाद्य समस्या भी उपासना से कम नहीं है। कौन किसकी किस रूप में उपासना करे कुछ स्पष्ट नहीं होता। छः फुट का आदमी अब शायद ही मिले—यदि चारपाई पर सोयेगा तो उसकी लम्बी टांगें काट दी जायँगी क्योंकि सीमित रहना पड़ेगा तथा चारपाई को बढ़ाने में असमर्थता भी है—साधन बढ़ाने से ठीक नहीं होगा। 'कागजी-योजनाओं में 'लूप' का भी पारी आ गई। जन-संख्या पर नियन्त्रण आवश्यक हो गया है। जब अन्न, जल, दूध आदि पेट में शुद्ध नहीं हैं-तब शुद्ध विचार की आशा आप क्यों करते हैं? इसलिये समझकर बोलिये—जो होता है, होता रहेगा। आपकी आवाज 'टांय-टांय फिस' हो जायगी। कलियुग की मान्य-ताओं पर सोचकर चलिये-नहीं तो कठिनाइयाँ और बढ़ेंगी। वर्ण-धर्म चला गया, ब्रह्मचर्यादि आश्रमों ने अपना स्थान छोड़ दिया, अधर्म के त्रास से कम्पित होकर धर्म भी भाग खड़ा हुआ एवं कर्म, उपासना और ज्ञान को कुवासना ने नष्ट कर दिया।

इस प्रकार वचन मात्र के वैराग्य और वेष ने जगत् को ठग सा लिया है– तभी तो गोस्वामी जी ने लिखा है, "करमु उपासना कुवासना-विनास्यो ज्ञानु-वचन विराग, वेष जगतु हरो–सो है।" समय आने दीजिये— देखियेगा, नटका भांति अपने पेट रूपी कुत्सित पेटारे से करोड़ों इन्द्रजाल के कौतुक दिखाये जायेंगे। आप अवश्य ही मुग्ध हो जाइयेगा। इसके साथ ही, 'आधुनिक-उपासना' को भो बात समझ में आ जायगी।

'प्रजातंत्र' में आप विश्वास रखिये! कुलीन उपासक बनिये–इसी में आप का कल्याण है। उपासना कई प्रकार की होती है। अपने लक्ष्य को प्राप्ति भी–उपासना ही है। मैं जानता हूँ आधुनिक उपासकों की कठिनाइयां भा बढ़ती जा रही हैं। समाज सदैव भविष्य के लिये बनाया जाता है। गोस्वामी जी को भविष्य का ज्ञान था। उन्हें कलियुग की स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो चुका था। उन्होंने लिखा है कि – ऐसी भोषण परिस्थिति में संसार का संकट मिट नहीं सकता है क्योंकि कलियुग में न कहीं वैराग्य है और न ज्ञान ही। सब सारहीन और असत्य पूरित प्रतीत होता है।

हमें 'कलियुग' का हवाला देना बिल्कुल पसन्द नहीं है। 'गान्धीवाद' और समाजवाद' में हमें भी विश्वास है किन्तु वाद' के 'विवाद' से–कोई समस्या हल नहीं होने वालो है। 'रघुपति राघव राजाराम'–गान्धी जी का मूल मन्त्र था। इसो के आधार पर उनको सत्य, अहिंसा और आत्म-परीक्षण की सच्ची उपासना प्राप्त हुई। उन्होंने सत्य और अहिंसा के आधार पर ही आत्मा के शुद्धिकरण को स्वीकार किया था। सबसे ग्राह्य बात यह है कि–महात्मा गान्धी ने 'राम' के आदर्शों को–व्यवहार में लाने की प्रेरणा दी। बहुत लोग अपने को केवल 'गान्धीवादी' कहने में कुछ गर्व का अनुभव करते हैं किन्तु जब मैं गान्धी जी को उपासना या उनके आदर्शों के प्रति उनको श्रद्धा देखता हूँ तो अवश्य दुःख होता है। नीति एवं मान्यताओं को चरित्र व्यवहार में लाना–गान्धी जी के जीवन की वास्तविक उपासना थी। उपासना के लिये त्याग और भक्ति की आवश्यकता

पड़ती है। भक्ति की शुद्धता से ही भक्त भगवान के निकट पहुँच जाता है। जीवन-मार्ग में भक्त पथिक के लिये इससे वड़ा और कोई पाथेय नहीं है–ऐसा मेरा अपना विश्वास है। अच्छी उपासना तब होगी जब लोभ, मोह, काम एवं आसक्ति आदि मनुष्यमें नहीं होगी। ऐसी स्थिति में ही नये समाज की स्थापना हो सकती है।

गोस्वामी जी ने लिखा है कि "जब तक तुलसीदास राम' का खुल्लमखुल्ला दास नहीं हो जाता-तभी तक वह लोभ के कारण लोलुप, लालची और वाचाल बना हुआ है।" इसका कारण उन्हें मालूम था कि, क्रोध ने किसको नहीं जलाया ? काम ने किसको वशीभूत नहीं किया ? लोभ ने किसकी त्रस्त नहीं किया ? सुरलोक नरलोक एवं पाताललोक में ऐसा कौन है–जिसको मोहने न जीता हो ? उपासना करते हुये इनसे तो मात्र वही बच सकता है, जिसकी रक्षा कमल-नयन 'श्री राम' करते हैं। "राम-नाम को–कल्प तरु, कलि-कल्याण निवास–जो सुमिरत भये भाग्य से तुलसी-तुलसीदास।" 'राम-नाम'का कल्पवृक्ष कलियुग में कल्याण का घर है–जिसकी उपासनाके कारण ही तुलसी, तुलसीदास हो गये।

आज 'कलियुग' का प्रभाव चहुँ-ओर दिखाई पड़ रहा है। गोस्वामी जी ने इस युग की भावी कल्पना करते हुए जो कुछ लिखा–आज अक्षरशः सत्य प्रतीत हो रहा है। उनका वि-श्वास था कि जब कलियुग का महा दोष वढ़ेगा तब प्राणी तनु-क्षीण हो जायेंगे "जब वर्णाश्रम-धर्म सब ह्वै हैं जगत् विनाश–तव वेदन के ग्रन्थ को नेक न रहें प्रकाश।" धर्मके वदले में केवल पाखंड ही पाखंड रह जायगा राजा लोग लुटेरे होंगे। वृथा हिंसा और वात-वात में झूठ बोलकर नाना प्रकार की वृत्तियों को करेंगे। वुरे कामों में निष्ठा वढ़ेगी। सब वर्णाश्रम शूद्र के सदृश हो जायेंगे। चारों आश्रम गृहस्थ-आश्रम हो जायेंगे। जब महा भयंकर कलियुग' के अन्त का समय आवेगा तब धर्म की रक्षा करने के लिये आदिपुरुष भगवान शुद्ध सतोगुण निष्कलंक रूप से प्रकट होंगे।

आज तो कलि के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया है। अच्छे ग्रन्थ लुप्त हो गये। पाखण्डियों ने अपने मत

की कल्पना करके वहुत से पंथ निकाल लिये हैं। कोई नवीनपन्थी, कोई वामपन्थी, कोई चरणदासी और कोई वेदत्यागी इत्यादि वन गये हैं। इस सम्वन्ध में गोस्वामी जी ने लिखा है कि, "भये लोग सब मोह वश, लोभ ग्रसे शुभ कर्म......।" मोह-पाश्व में वँध जाने के कारण, लोभ ने अच्छे कर्मों को समाप्त कर दिया है। स्व० कवि शालिग्राम ने इसका चित्रण स्पष्ट रूप में किया है--

'कलियुग' के आते ही-
धर्म की मर्यादा मिटै,
दुष्ट-जन गायें और
विप्रों को सतावेंगे।
जीवों का श्राद्ध करो,
पितरों को मानो मत,
शालिग्राम पत्थर, नदी
गंगा को बतावेंगे॥
शास्त्र और पुराण को
झूठा कहैं बारम्बार,
अद्‌भुत पाखण्ड-खण्ड
खण्ड में फैलावेंगे।
ऐसे-ऐसे अत्याचार होंगे
जब पृथ्वी पर,
उस दिन कह कृष्ण
किसे हम बुलावेंगे॥

सत्ययुग, द्वापर, त्रेता में ज्ञान-वैराग्य, मुक्ति और उपासना के सच्चे साधक थे-और इन्हीं के द्वारा महात्मा पुरुषों का उद्धार होता था। कलियुग में केवल भक्ति ही प्रधान है। ज्ञान और वैराग्य को समझने वाले-बहुत कम हैं। वारम्वार मात्र कथा सुनने से भक्ति, ज्ञान-वैराग्य का मुख खुल नहीं सकता। पूर्वकाल में ऋषीश्वरों-मुनीश्वरोंने भक्तिके मार्ग तथा धर्म-कर्मके अनेक पन्थ वताये थे-किन्तु वे अधिक श्रमसाध्य हैं। मुक्ति-साधक मार्ग अत्यन्त ही गुप्त हैं—जिनके उपदेशक और मार्ग वताने वाले गुरु भाग्य से ही प्राप्त होते हैं। "बार-बार मोहि दीजिये-नाथ यही वरदान" कहकर गोस्वामी जी ने 'परमारथ' की याचना की थी क्योंकि उनके सामने अपना हो दुःख नहीं था-वे तो समस्त मानव-दारिद्रय दुःखों के सच्चे उपासक थे। गोस्वामी जी की उपासना कर्म-प्रधान थी। उन्होंने कर्म की उपासना का आश्रय स्वीकार किया। जब कर्म का

आविर्भाव व्यवहार में होगा, मानव कर्त्तव्य-निष्ठ होगा–तो समाज सुखी-सम्पन्न होगा। इसलिये वर्तमान समाज में 'आधुनिक उपासना' को वास्तविकता को स्वीकार करना प्रत्येक मनुष्य का मानव-धर्म है–यही सामाजिक सुखों का मूल कारण है—गोस्वामी जी का यह दृढ़ विश्वास था।

वर्तमान समय में 'आधुनिक उपासना' एक न सुलझने वाली समस्या बनी हुई है। आखिर, इसका निराकरण कैसे हो सकता है? यह एक विचारणीय प्रश्न है। इस पक्ष पर सम्यक् दृष्टि से देखना-मनुष्य का परम कर्तव्य है। भारतीय-संस्कृति के पोषकों द्वारा प्रतिपादित मान्यताओं की अवहेलना ही आज के अनेक कष्टों का मूल कारण है। इसके लिए हमें आत्म-परीक्षण करना होगा। आदर्शों को भाषण की वस्तु बनाना, समाज के लिए पतन और अभिशाप का कारण है। कोई भी लेखक, कवि या विचारक समाज को देखता है। उसके हृदय में समाज और देश की पीड़ा समाई रहती है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य का सच्चा कर्म ही उसकी सबसे बड़ी उपासना है। आदर्शों को कुछ भी अंशमें चरित्र और व्यवहार में उतारना–उसकी वास्तविक उपासना है। तुलसी ने राम' के माध्यम से—समाज में अनेक प्रकार का आदर्श रक्खा है। आदर्शों पर चलकर ही मानव का कल्याण सम्भव है—यह मेरा अपना दृढ़ विश्वास है। आदर्शों की सीमा में परिवार, समाज़ और राष्ट्र के हित स्थित हैं तभी 'तुलसी के राम एवं आधुनिक उपासना'' की सार्थकता सिद्ध हो सकती है।

अन्त में अभिमन्यु पुस्तकालय' (गुरुबाग) वाराणसी के संस्थापक एवं पुस्तकालयाध्यक्ष पं० बनारसी लाल जो 'आर्य' के हम हृदय से आभारी

हैं, जिन्होंने पुस्तकालयके अन्तर्गत होने वाले साहित्यिक तथा आध्यात्मिक आदि समारोहों में मुझे समयानुसार सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया है। उनके सतत प्रयास का ही परिणाम है कि प्रत्येक वष में अनेक सामाजिक, साहित्यिक एवं आध्यात्मिक त्यौहार वड़ी ही निष्ठा एवं तत्परता के साथ मनाये जाते हैं। इसीलिए यह संस्था 'अमर शहीदों' एवं भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं को प्रतीक वन गयी है। श्री 'आर्य' जी के सौजन्य से ही मेरा यह लेख "तुलसी के राम एवम् आधुनिक उपासना" पाठक-वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत है।



तुलसी की रक्षा का उद्देश्य

[डॉ० केशव प्रसाद सिंह]

गोस्वामीजी जिस काल में रहते थे वह काल समाप्त हो गया। परन्तु तुलसी काल का जयी साम्राज्य आज भी वर्तमान है। यह साम्राज्य विश्व में महान स्थान प्राप्त करेगा। हिमालय ने हमें विदेशी शत्रुओं से बचाया था। तुलसीने संस्कृति के माध्यम से देश की जाति और उसके गौरव को बचाया-आज हम तुलसी को बचायें। यह इसलिए कि प्रशस्ति के बढ़ने पर तत्व चिन्तन छूट जाता है। मूल्य के विलुप्त होने पर दृष्टि केवल मानस के पाठ-पूजन पर ही केन्द्रित हो जाती है। आज का युग वैज्ञानिक है। सभी बातें विज्ञान की कसौटी पर ही मान्य होती हैं। हम 'मानस' की सत्यता को मानसिक विज्ञान की कसौटी पर खरी उतार दें तो अधिक मान्य होगी। ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा का भाव सदा से रहा है। यह भाव कभी भी तृप्त नहीं होता। विज्ञान के द्वारा वस्तु की स्थूलता (भौतिकता) सिद्ध होती है तथा आध्यात्म के द्वारा सृष्टि को अलौकिकता। प्रत्येक वस्तुमें द्रव्य तथा शक्ति दो वस्तुएँ हैं। द्रव्य शक्ति से ही स्थिरता प्राप्त करता है। तुलसी के 'राम' में भी 'राम' शब्द द्रव्य है तथा उसमें निहित कृशानु, भानु-हिमकर का हेतु शक्तितत्व है। यह शक्ति ही राम की चेतना है। इस शक्तिका कपिल से शंकर पर्यन्त सभी मानते हैं। यह शक्तिपरंपरा गोस्वामीजी को ऋग्वेद से प्राप्त है। सृष्टि के सृजन तथा संहार दोनों कालों में अग्नि की आवश्यकता होतो है।

तुलसीने माया को भली भाँति समझा है। माया अव्यक्त दारुगत तथा व्यक्तरूप पावक सम है। एक

आवरण शक्ति है दूसरी विक्षेप शक्ति क्या कारण है कि हम अपनी सम्पूर्ण दार्शनिक मान्यता को छोड़कर तुलसी की गाथा गारहे हैं। महाकविने अपनी रचना-कला का ऐसा मंच बनाया है जिस पर हम सभी पात्र अपने भावों को अभिनीत करते हैं। मानस एक दीप स्तंभ है। इसके आलोक में कोई भी दिग्भ्रान्त पथिक अपना पथ खोज सकता है। यह दीप-देश, काल, जाति धर्म, निज पर के भावतमिस्त्र का भेदन कर देता है।

गोस्वामीजी का काल अकबर का काल है मुगल साम्राज्यीय कला एवम् संस्कृति का स्वर्ण युग है। तानसेन तथा अबुल फैजी का काल है। अकबर की नीति में हिन्दू संस्कृति का मटिया-मेट करने का पूर्ण प्रयत्न है। भौतिक एवम् आध्यात्मिक उभय दिशाओं से वह हिन्दू - राज्य - संस्कृति को ध्वस्त करने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है। तुलसी इसे समझते थे। देशकी देह तथा आत्मा की रक्षा के लिये उन्होंने अपनी साहित्य-रचना को आधार बनाया। संत - साहित्य के द्वारा आध्यात्मिक उत्थान तो हो रहा था परन्तु सांस्कृतिक धरातल समाप्त हो रहा था। अतः तुलसीने इन्हें फटकारा। तुलसी का लोक नायकत्व निराला था। उन्होंने जन क्रांति की हिंसक धारा को राम कथा के प्रवाह में विलीन कर दिया। वे शील-सौन्दर्य तथा शक्ति के लोक रंजक रूप में राम का नायकत्व स्वीकार किये। राम भारतीय चेतनाके राष्ट्रपुरुष हैं। महाकवि राष्ट्र नायक की आत्मा में लय हो गये हैं।

'मानस का आधुनिक सन्दर्भ'

[डॉ० युगेश्वर]

रामचरित मानस के प्रति हम लोगों का उद्देश्य भी सामजिक है। हमारो आधुनिक शिक्षा, हमें अपनी संस्कृति से अलग करती है। आज से कुछ दिन पूर्व एक विद्वान ने कहा था कि तुलसी का मोह भंग हो गया था। परन्तु तुलसी का मोह भंग नहीं हुआ था। मानस में ऐसे मानवीय तत्व हैं जिन्हें देखने से प्रतोत होता है कि गो स्वामीजी को मोह नहीं था। 'निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण जान कोइ कोय' का विचार आज के लिये बहुत उपयोगी है। हम ईश्वर के निर्गुण रूप को शोघ्र नहीं प्राप्त कर सकते तथा उसके सगुण रूप को और भो अधिक कठिनाई से प्राप्त कर सकते हैं। यह चेतन पुरुष अमल-अहिंसक शान्ति और दया भाव वाला सगुण ईश्वर है। ऐसे गुण जिन व्यक्तियों में हैं वे सभो ईश्वर हैं। मन्दिर की मूर्ति की अपेक्षा झाड़ू लगाने वाले में ईश्वर को देखना आज सबसे बड़ी साधना है ईश्वरत्व चरित्र से सम्बन्धित है। यह जाति और कर्म से सम्बन्धित नहीं है। अभी अभी अम्बेडकर जयन्ती के अवसर पर एक व्यक्ति ने यह कहा कि राम की छाती पर ब्राह्मण का पैर शोभा नहीं देता। राम-जन्म के अनेक कारण हैं। तुलसो ने कहीं भो राम जन्म का हेतु-शूद्र की हत्या को नहीं कहा। राम - जन्म तो ब्राह्मण-वध के लिये ही होता है। रावण पुलस्त्य का पौत्र है। वह गो, ब्राह्मण, आदि की हत्या करता है। आज का व्यक्ति रावण वाली धारा का समर्थक है। वाशिष्टो धारा की उपेक्षा करता है। सभी प्रकार से ज्ञान - विज्ञान सम्पन्न होकर भी यदि ब्राह्मण धर्म-च्युत हो जाता है तो बहुत ही भयंकर हो जाता है। रावण कुबेर का सम्बन्धी है। उसने

ज्ञान एवम् विद्या के केन्द्रों को आतंकित कर दिया है। रावणके राज्य की दशा हो राम जन्मका मूल कारण है। तुलसी दास यहाँ यह संकेत करते हैं कि महान् से महान् एवम् धनवान रावण ऐसे व्यक्ति की हत्या भी संगत है। ऐसी दोष युक्त गुरु की हत्या को मनुस्मृति भी संगत मानती है।

तुलसी रामचरित-मानस के माध्यम से सबके हृदय में राम का विकास करना चाहते थे। रामकथा के विकास में मंथरा एवम् लक्ष्मण का चरित्र बहुत ही महत्वपूर्ण है। मंथरा का निन्दनीय चरित्र बहुत महत्वपूर्ण है। लक्ष्मण राम की यश पताके दण्ड हैं। उनका क्रोध राम का मनस्तत्व है। राम क्रोध नहीं करते परन्तु राम के क्रोध की अभिव्यक्ति लक्ष्मण के द्वारा हो जाती है। ऐसे ही आज के नेता का क्रोध उसका कर्मचारो बहन करता है।

परिस्थिति के अनुमार मंथरा, कैकेयी की ठकुर सोहाती करना चाहती है या मौन रहना चाहती है। प्रश्न उठता है कि लोकतन्त्र की रक्षा के लिए आज का नागरिक मंथरा के समान ठकुरसोहाती करेगा या अत्याचार का विरोध करेगा ? रामराज्य में एक दासी भी ठकुरसोहाती नहीं करती। इसी प्रकार आज लोकतन्त्र में भी व्यक्ति शासक। वर्ग की ठकुर सोहाती नहीं करेगा। वह प्रधान मंत्री या मुख्य मन्त्री की सभी बातों को आँख मूँद कर नहीं मान लेगा। वह लोकतन्त्र की रक्षा के लिये उचित कहेगा।

आधुनिक युग की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए रबि ठाकुर एवम् गाँधी दोनों व्यक्ति एकाकी यात्रा प्रारम्भ करते हैं। इसका प्रेरणा-बीज मानस में है। राम के राज्याभिषेक का लक्ष्य समाज का मंगल है। अतः प्रजा के मंगलार्थ वे वन में प्रसन्न होकर चले जाते हैं। वन में प्रिया-विछोह काल में राम हनुमान द्वारा अयोध्या से सेना बुलाकर युद्ध जीत सकते थे। परन्तु उनका प्रयत्न अन्य प्रकार का होता हैं। उनका ऐसा प्रयत्न युद्ध को दो राज्यों के संघर्ष में बदल देता। रामने बनवासी असभ्य अशिक्षित व्यक्तियों को संगठित किया। उन्होंने लन लोगों

को नेता भी बनाया। इसपर विभीषण को चिन्ता हुई। राम का प्रयत्न भारतीय असहयोग के मनोबल से पुष्ट था। रावण का पक्ष वृटिश जैसे साम्राज्यवादी शासक का पक्ष था। राम ने अपने सेवक को अपने से भी महान बनाया। राम इस महान युद्ध काल में ग्राम तथा नगर से दूर हो रहे—'बरस चार दस गाँव न जाऊँ।' गाँव-नगर लोभ मोह में जकड़ देते हैं। अतः विभीषण का अभिषेक भी वह गाँव से बाहर ही करते हैं। यही राम की महानता है। यही आदर्श हमारी महानता का कारण है। एक ही पुरुष है। उसकी नाना आकृतियाँ हैं। अपनी संस्कृति को स्वीकार करने का ही हमारा संकल्प है। शिक्षा हमारी पशुता को दूर करे, इसके लिए हमें 'मानस' से ही प्रेरणा प्राप्त हो सकती है। इस आदर्श को बार-बार देखने और समझने की नितान्त आवश्यकता है।



"भायप भगति भरत आचरनू"

[डॉ० देवराज यादव]

राम-कथा के समस्त महत्व-पूर्ण चरित्र नायकों में 'भूतल भाव भरत' का चरित्र सर्वाधिक उज्ज्वल एवं व्यापक है। यों तो भरत का चरित्र स्वयं अपने में पूर्ण, महान् एव आदर्श है, तथापि तुलसी जैसे लोक-नायक एवं संवेदनशील भावुक कवि के हाथों में आकर सोने में सुगन्धि की भांति भरत-चरित्र की उज्ज्वलता का प्रत्येक पक्ष, बहुगुना निखर उठा है। मानसकार तुलसी ने भरत में ही रामभक्ति का चरम विकास देखा है। और आगे बढ़कर भरत में ही भ्रातृ-प्रेम एवं भायप-भक्ति को चरमोत्कर्ष दिखाकर "राम से अधिक राम कर दासा" उक्ति को सार्थक किया है। इसी कारण मानसकार तुलसी जी का हृदय-शील, विनय शक्ति एवं सौन्दर्य सम्पन्न भरत के साथ ही लगा जान पड़ता है। भरत के हृदय की निष्क-लुषता-जन्य आत्म ग्लानि, अगाध स्नेहार्द्रताजन्य 'भायप भगति' अथवा स्वामी भक्ति से प्रेरित शील-विनय एवं कर्त्तव्य परायणता से उद्भूत, त्याग, एवं तवस्या आदि ऐसे गुण हैं, जिनकी अनुभूति, हृदयहीन प्राणियों के मन में भी भावमयता उत्पन्न करने की क्षमता रखती है। इसलिए यह युक्ति भरत के चरित्र के लिए अत्यन्त सार्थक सिद्ध होती है --

जो न होत जग जनम भरत को।
अचर सचर चर अचर करत को ?

यों तो मानस में अनेकानेक ऐसे स्थल मिलते हैं, जहाँ पाठकोंका थका-हारा मन भरत के चरित्र का दर्शन करके आदर्शमय नवजोवन सम्बल लेकर चलता है तथा अपने हृदय की कर्कशता, वक्रता एवं कुटिलता को भरत के स्नेह-सौजन्य से सिंचित करता है, किन्तु अयोध्याकाण्ड में यह भरत चरित्र अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दृष्टिगत होता है। भरत चरित्र

की उत्कर्षता, विशालता एवं गहनता पर दृष्टिपात करके कभी-कभी यह संदेह हो जाता है कि शायद मानसकार ने भरत के चरित्र की उत्कर्षता अथवा आदर्श की प्रतिस्थापना के लिए ही अयोध्या काण्ड का सृजन किया है। भरत के चरित्र की पराकाष्ठा का दर्शन हमें उस समय होता है, जब भरत ननिहालसे लौटते समय साकेत (अयोध्या) की सरिताओं को श्रीहत पाते हैं। 'यदि इसके पूर्व भरत को राम के वन-गमन का संदेश मिल गया होता तो हम इसे भरत के हृदय की छाया कहते।'

भरत का चरित्र स्वयं अपने में विशाल है और यह चरित्र की विशालता विकासावस्था को पार कर विशाल समुद्रका रूप धारण कर लेती है इसीलिये तो मानसकार ने लिखा है--

'प्रेम अमिय मंदर विरह, भरत पयोधि गंभीर।' इस 'भरत पयोधि' में ज्ञान, कर्म और भक्ति का पावन संगम हुआ है। ये त्रिविध स्त्रोत अपनी पावन धारा को लेजाकर सागर को प्रतिक्षण अथाह बनाये रखते हैं। विचित्रता तो इस बात को है कि अन्य सांसारिक सरिताएँ जो इस सागर से मिलने के लिए अपने उद्गम स्थल से चलती हैं, वे या तो अपना मार्ग बदल देती हैं या राम-प्रेम का पावन जल लेकर ही आती हैं। भरत का चरित्र कर्म ज्ञान और भक्ति की ऐसी त्रिपथगा है जो 'सुरसाधु हित' चिन्तन करती है। कदाचित् इसीलिये मानसकार ने भरत का वन्दना करते हुए लिखा है --

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना।
जासु नेम ब्रत जाइ न बरना।।
राम-चरन पंकज मन जासू।
लुबुध मधुप इव तजइ न पासू।।

भक्ति के तो मानो भरत अवतार ही थे। इस अखिल विश्व में भरत ने भक्ति का जो लोक पावन दृष्टान्त प्रस्तुत किया है—यह केवल भरत से ही आशा की जा सकती है। जिस समय भरत राम को मनाने जा रहे हैं, मार्ग में तीर्थराज प्रयाग पर स्नान करके अपनी अविचल भक्ति की मांग करते हैं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष-चारों पुरुषार्थ इस भक्ति की तुलना में रज से अधिक महत्व नहीं रखते। उनके लिए तो राम-चरण-रज सबसे

बहुमूल्य वस्तु है—

अर्थ न धर्म न काम रुचि,
गति न चहहुँ निरवान,
जनम-जनम रति राम-पद,
यह वरदान न आन।

सच तो यह है कि श्री भरत के भाव और वैराग्य का अभिव्यक्तिकरण करनेकेलिए कोई भी रूपक या उपमा सम्भव नहीं है, वे निरूपक पुरुष जो ठहरे।

रामचरित-मानस में गोस्वामी जी ने श्री भरत के यश का वर्णन करते समय उसको समता चन्द्रमा से देकर बड़ा ही सुन्दर और तद्रूप रूपक का उदाहरण उपस्थित किया है। मानो उसी का रसास्वादन कराने के लिए श्री भरत को कीर्तिकलाधर का अवतरण किया गया है। समुद्रमंथन में केवल चौदह रत्न निकले थे। परन्तु 'भरत पयोधि' का मंथन करने से भरत के अनन्त गुणों का प्रादुर्भाव हुआ है। इन रत्नों की गणना किसी भी कविहृदय के लिए संभव नहीं। इसी प्रसंग में श्री भरद्वाज के मुख से जिस एक रत्न का गान हुआ है वह है श्री भरत का यश-चन्द्र। कवि स्वयं इस यशचन्द्र का रूपक बांधते हुए लिखता है—

नव विधु विमल तात जसु तोरा।
रघुबर किंकर कुमुद चकोरा।
उदित सदा अथवँहि कबहूँ ना।
घटहिं न जग नभ दिन-दिन दूना।
× × × ×
लोक तिलोक प्रीति अति करहीं।
निसि दिन सुखद सदा सब काहू।
ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू।

पूरन राम सुप्रेम पीयूषा।
गुरु अवमान दोष नहिं दूषा।
राम भगत अब अमिय अथाहू।
कीन्हेहुँ सुलभ सुधा वसुधा हूँ।

महाकवि ने एक ही साथ कुमुद और चकोर की दो उपमायें प्रदान की हैं। अतः स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि भगवद् भक्तों की प्रीति व्यक्त करने के लिये कुमुद और चकोर की क्या दो उपमायें देना उचित था? सचमुच भक्तों की दो श्रेणियाँ हैं- निवृत्तिमार्गी और प्रवृत्तिमार्गी। श्री भरत जी के चरित्र से निवृत्ति और प्रवृत्ति दोनों ही मार्गों के राम भक्तमुग्ध रहते हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा का उदय होने पर कुमुद

प्रफुल्लित होते हैं। जड़ पदार्थ जड़ होते हुए भी चेतनवत् व्यवहार करते हैं तथा चकोर चेतन होते हुएभी जगत केलिए जड़वत्हो जाते हैं। उसी प्रकार विरक्त पुरुष भी भक्त के यशोगान से अनुरक्त हो जाते हैं तथा संसार में अनुरक्त पुरुष भी श्री भरत के चरित्र को सुनकर उसमें अनुरक्त एवं संसार से विरक्त हो जाते हैं।

श्री भरत-यश चन्द्र में श्री रघुनाथ जी का सनेह रूपी अमृत वसता है। यह भाव इस चौपाई से स्पष्ट हो जाता है--

भरतहि जानि राम परछाहीं।
राम प्रेम मूरति जनु आहीं।।

प्रेम का सर्वश्रेष्ठ अंग है— 'तत्सुख सुखित्वम्' याना प्रेमी के सुख में सुख मानना। उस स्थिति में प्रेमी से अलग अपना सुख रह ही नहीं जाता।

प्रेम का दूसरा अंग है—'अनुकूलस्य संकल्प प्रतिकूलस्य वर्जनः' वही कार्य करना जो प्रेमी को अभिप्रेत है। प्रतिकूल आचरण छोड़ देना चाहिए।

प्रेम का तीसरा अंग है—प्रेम पात्र के सम्पर्क में आने वाली वस्तुओं से अनुराग रखना।

प्रेम का चौथा अंग है—विरह की तीव्र अनुभूति। विरह की वस्तुतः प्रेम की कसौटी है। अतः इसी पक्ष को लेकर भरत में 'विरह पयोधि गम्भीर' कहकर पाठकों को राम नाम का अमिय पान कराया गया है।

श्रीभरत का राम के प्रति अनन्य भाव है। 'जनम-जनम रति रामपद' चाहने वाले भक्त श्री भरत, राम की उपेक्षा मन, वाणी और कर्म से कभी करना तो दूर रहा सोच तक नहीं सकते थे। राम से त्रिलग भरत का हृदय एक क्षण भी नहीं रह सकता। यही कारण है कि प्रेम-पंथ का वह अविचल पथिक, पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया का समापन करते ही चित्रकूट की ओर प्रियतम राम को मनाने चल पड़ता है। भरत का शरीर अत्यन्त क्षीणकाय हो गया है तथापि वदन पर अद्भुत कान्ति सुशोभित है और प्रीति का अनन्त साम्राज्य छा गया है। श्रीभरत का हृदय 'भायप भगति' से सिंचित तथा स्वामिभक्ति से अनुप्राणित है। उनके आदर्श चरित्र में

राम के प्रति अगाध स्नेहस्वर गूंजता हुआ दृष्टिगत होता है। राम के प्रति उनका स्नेह केवल एक अग्रज के प्रति आदर सम्मान अथवा श्रद्धापूर्ण प्रेम ही नहीं है अपितु उसके ऊपर उठकर वह जिस पराकाष्ठा तक पहुँचा है उसका वह रूप वास्तव में मानसकार के शब्दों में—'धरे देह जनु राम सनेहूँ. के रूप में सार्थक हुआ है। 'भायप भगति' में ही सेवक-धर्म एवं भातृ-धर्म दो गुण एक साथ आकर निहित हो जाते हैं। सेवा-धर्म के कठोर व्रत का पूर्ण-प्रवाह भरत-चरित्र में मिलता है। भरत जी अपने जीवन को एक मात्र लक्ष्य सीतापति राम की सेवा ही समझते हैं। उन्हें यह अवसर अपनी स्वमाता कैकेयी की कुटिलता के कारण सुलभ न हो सका। यही उनके पश्चात्ताप का मूल बिन्दु है। भरत जी स्वयं कहते हैं—

हित हमार सियपति सेवकाई।
सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई॥
मैं अनुमान दीख मन माहीं।
आनु उपाय मोर हित नाहीं॥

अन्ततोगत्वा "शरदातप निशि शशि अपहरई। सन्त रस जिमि पातक टरई" के अनुसार भरत का सनेह शशि-सुधा तुल्य है जो विषय सन्तप्त सांसारिकता में आकुल जनों पर भक्ति-प्रेम की शीतल धारा का वर्णन करके उन्हें शीतलता प्रदान करता है। भरत का चरित्र मानस का सबसे विशुद्ध, सबसे प्रशस्त चरित्र है। क्योंकि उनमें कीर्ति, कर्त्तव्य, ज्ञान, धर्मपालन, शील, गुण, निर्मल ऐश्वर्य आदि गुण बहुलता में भरे पड़े हैं। "जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। मैं बपुरी खोजन गई, रही किनारे बैठ।' को चरितार्थ करने वाले भले ही उनकी महिमा को पूर्ण रीति से न जान सके, उनके प्रेम तल तक न पहुँच सके, उनके गुणों को हृदयंगम न कर सके किन्तु उनके शील-विनय से प्रत्येक जन-मन परिचित है। उनके अन्य गुण भी लोक मंगलकारी हैं। जहाँ तक पवित्रता का सम्बन्ध है—यह गंगा से भी श्रेष्ठ है। क्योंकि गंगा केवल मोक्ष प्रदायिनी है, उसमें अवगाहन करने से मुक्ति सुलभ होती है; किन्तु भरत गुण-सरित में अवगाहन करने से मुक्ति और प्रेम दोनों ही सुलभ हो जाता है। स्वाद की दृष्टि से यह चरित्र अमृत से भी

बढ़कर है क्योंकि अमृत का पान करने से तृप्ति हो जाती है, भरत-चरित्र अमृत का पान करने से हमेशा भक्ति मृगतृष्णा बनी रहती है। भरत-चरित्र जैसा सुस्वाद पंचगव्य भी नहीं धारण कर सकता। अतः हर प्रकार से यह चरित्र अप्रतिम और अतुलनीय है। सम्पूर्ण मानस में भरत हो ऐसे पात्र हैं, जिनका चरित्र कलंक-रहित रह गया है। प्रत्येक पात्र में कहीं न कहीं दोष आ गये हैं। स्वयं मर्यादा पुरुषोत्तम राम भी इस कलंक से बच नहीं पाये हैं किन्तु भरत के लिये कलंक नाम की कोई वस्तु ही नहीं है।

●

सन्तशिरोमणि तुलसीदास

(परज राग)

जय हुलसी-सुत, तुलसीदास। जय०
रामचरित-मानस रच तुमने,
किया अमर अपना इतिहास।
भक्त भावुकों में पैदा की,
तुमने आस्था की अभिलाष।
शैव--वैष्णवों को समझाया-
दोनों रूप एक के खास।
'कविपुष्कर' इनके जपने से---
होता दूर, क्रूर कलि—त्रास।

———

सन्तशिरोमणि थे अहो—
पावन प्रेमागार।
जोकि आदि कवि के रहे—
अनुपमेय अवतार॥

———

--'कविपुष्कर' शास्त्री

हुलसी के तुलसी

ओ वाणी के प्रिय वरद पुत्र,
मेरे उर में आलोक भरो।
ओ हुलसी के तुलसी ललाम,
मेरा प्रणाम स्वीकार करो।
पा प्रबल तुम्हारा अवलंबन,
हिन्दी दुनिया में हुई अमर।

जिस वस्तुभाव का किया स्पर्श,
हो गया अजर वह अविनश्वर।
है लगो वरसने भक्ति सुधा,
तव आने से इस धरती पर
इक विन्दु उसी का 'मानस' है,
जिसकी अग, जगमें ख्याति प्रखर।

यह धन्य, धन्य, कर उठो धरा,
पा कर सुपुत्र तेरे जैसा,
तब हुलस कहा यों हिन्दी ने,
किसका है भाग्य मेरे ऐसा?
जीवन के हर कोणों को लरख,
रच डाला तुमने रामचरित,
ऐसा अपार भण्डार देख,
सम्पूर्ण विश्व रह गया चकित!
ओ, भारत के इतिहास, पुरुष!,
तुम फिर इस अवनी पर उतरो,
फिर आओ इस वसुधा-तल का,
सब पाप, शाप, सन्ताप हरो!

—गंगाराम 'तरुण'



मानस-मनन की महत्ता

[श्री बाल कृष्ण जोशी "दर्शन"]

"मानस मननते, जन मानस सुधरिहैं"

प्रिय शकुन्तला बहन;

शुभाशीर्वाद —

तुम्हारा पत्र प्राप्त हुआ। पारिवारिक कुशलक्षेमोपरान्त ज्ञात हुआ कि वंगलोर ही नहीं प्रायः पूरे दक्षिण भारत में सम्प्रति गोस्वामी तुलसीदासकृत रामायण (राम चरित मानस) का वहिष्कारात्मक प्रचार धुँआधार रूप से हो रहा है। राजनीतिक स्तर से विचार कर देखिये तो स्पष्ट है कि इस कुप्रचार के पीछे निश्चित रूप से एतद्देशीय तो हाथ नहीं ही है।

सम्प्रति भारत विश्व राजनीति का अखाड़ा बना हुआ है। इस देश का, इस देश की संस्कृतिका, सभ्यता का हितचिन्तक कोई है भी या नहीं यह सोचते हुए अवश्य ही 'छोटे मुंह बड़ी बात' हो सकती है। फिर भी कटु सत्य सा प्रतीत होता है कि जगन्नियन्ता स्वयं नहीं चाहता है कि भारत भारतीयों का रहे और न भारत की भारतीयता ही रहे। हितचिन्ता स्वयं निराशाके गर्त में डूबी सी जा रही है। ऐसी स्थिति में जहाँ अपना ही पता नहीं हैं, वहाँ भला ४०० वर्ष पूर्व के 'तुलसी' को समझना वैसा ही लगता हैं जैसे "प्रपौत्र कहे परदादा से कि तेरे परदादे की पैदाइश मैंने देखी है।" ऐसी अवस्था में कहना ही होगा कि 'हाँ बेटा! जरूर ही तुमने तो देखी होगी, मगर मैं ही नहीं देख पाया तेरा बचपन।"

कवि का काव्य क्या है, यह तो न्यूनाधिक सभी समझ लेते हैं, किंतु

कवि का कवित्व क्या है ? यह जानना बड़ा कठिन है। क्योंकि कवि स्वयं कहता है "कवि न होउँ नहिं चतुर कहाऊँ" ये कहके भी चतुराई की चूड़ान्तसीमा से बोल बैठते हैं कि "मति अनुसार राम गुन गाऊं।" अर्थात् जैसा राम का गुण है वैसा नहीं, 'मति अनुसार' प्रमाणित है कि 'राम एक तापस तिय तारी' किंतु मति अनुसार मैं कहता हूँ कि—

'नाम कोटि खल कुमति सुधारी।' वर्तमान काल में वही कुमति ऐसी सुधरी है जैसा कि तुमने लिखा है कि 'रामचरित मानस की प्रतियाँ फूंकीं जा रही हैं।' ऐसी अवस्था देखते हुये, क्यों न कहूँ कि प्रभू स्वयं चाहता है कि हम नष्ट-भ्रष्ट हो जायँ। यह भी हमारी 'मति अनुसार' राम गुण गाऊ जैसा ही समझो। यथा रावण की विरोधा भक्ति कि - 'ता सन जाइ वैर हठि करिहौं' अर्थात् चींटी कह रही है—

"पर लगाइ उड़ि के, जल मरि हौं।" यह वर्तमान शिक्षा द्वारा प्राप्त उधार बुद्धि का स्पष्ट प्रमाण है। किमधिकम् –

हाँ तो तुम्हारी जिज्ञासानुसार लिख रहा हूँ— गोस्वामी जी क्या थे, उन्होंने क्या लिखा और क्यों लिखा ? उनके इस अमर महाकाव्य ने जनता का किस प्रकार संरक्षण और विकास किया ?

गोस्वामी तुलसीदास एक मातृ-पितृ विहीन, असहाय, शैशव कालीन वातावरणमें तथा पत्नीद्वारा कामुकता के अतिरेक का निर्दोष लाञ्छन प्राप्त तिरस्कृत नवयौवनोपम स्नेह से वंचित–प्रौढ़ विद्यार्थी श्रेणी में कठिन श्रमसाध्य अध्ययनरत–धीर गम्भीर महाकवि के रूप में, वयोवृद्ध भक्त कवि के रूप में हमारे बीच परिचित हुये। इन्होंने अपने बाल्यकाल में बड़ों-बूढ़ों से सुना था लोदी पठानों की पराजय का इतिहास और सुना था, बाबर की विजययात्रा का जलता विवरण—हुमायूँ का शासन तथा पलायन की किम्वदन्तियाँ। तारुण्यावस्था में शेरशाह सूरी तथा उसके वंशधरों का वैभव तथा पराभव का अनुभव 'पुनः मुगल सम्राट अकबर का राज्याभिषेक, विजययात्रा, जौनपुर यवन शासन का पतन आदि एक के

बाद एक राजवंश के विकास और पतन की अनेक कहानियाँ, जो हमने सुनी है। उस कवि ने अपनी प्रौढ़ बुद्धि से देखा। अपने जन्मकाल से लगभग ३०० वर्ष पूर्व भारतभूमि पर आगत यवन-संस्कृति के बीज, जो अंकुरित हुए होंगे। उन अंकुरों का उन्होंने अपने जोवन काल में वृक्ष होते देखा।

उपरोक्त सारी परिस्थितियों का सामना तो आप दक्षिण भारतीयों को करना नहीं ही पड़ा है। फिर भला कवि की भावना को, कवि की रचना को, कवि को समझने की चेष्टा भी कैसे हो सकती हे! फिर भी तुम्हारी जिज्ञासा स्तुत्य है। उन समस्त दीन-हीन क्षीणक्षत विक्षत, छिन्न-भिन्न सम्प्रदायात्मक समाज को एक-एक कड़ी ठोस टांकों से जोड़ कर कुशल कारीगर की भांति ही गोस्वामो जो ने सामाजिक शृखला की रचना के रूप में, रामचरित मानस का गायन उन्होंने अपनी ७८ वर्ष की अवस्था में प्रारम्भ किया। यह तो हुई प्रथम जिज्ञासा को पूर्ति। अब हम तुम्हारे दूसरे प्रश्न पर संक्षिप्त उत्तरात्मक प्रकाश डाल दें। प्रश्न है "प्रभु सोइ राम की अपर कोऊ"। तुलसो का राम कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में भी हमें उसी ऐतिहासिक काल के सागर में फिर से गोता लगाने की आवश्यकता पड़ेगी। तत्कालीन धार्मिक विप्लवकाल में कुछ तत्व मिली जुली भगतमार भी चल रही थी। एक ओर महात्मा कबीरकी सर्व कर्त्तन सामर्थ्यवान 'कर्त्तरी' एक सिरे से दूसरे सिरे तक सभी कुछ कतरती ही चली जा रही थी। दूसरी ओर गुरु नानक देव का पंचीकरण दर्शनार्थं और कर्मणा भक्ति-भाव संकीर्त्तन। एक राम रहोम तुल्य कवीर का बहु-प्रचलित था। तीसरा गुरुनानक का राम रव्बा के रूप में था। इन्हीं वृक्षों की छाया में शिक्षा दीक्षादि भी प्राप्त की थी। इन्हीं वृक्षों तले सनातन धर्म की क्षतविक्षत दशा का आँखों देखा वर्णन न कर सकने के लिए बन्द-वाध्य कवि की वाणो ने मति-अनुसार रामगुण गाया और वही है यह "राम चरित मानस" यहाँ तत्कालीन प्रचा-लित धार्मिक स्थिति पर थोड़ा प्रकाश डालना अप्रासंगिक न होगा। तत्-कालीन इस्लामी भक्तिवाद की विल-क्षण भूमिका में अव्यक्त अल्लाह की उपासना. देवोपासना का कड़ा विरोध

अवतार वाद की अनास्था व्याप्त थी। सनातन धर्म प्रचार ही न्याय-संगत था। इसके दमनहेतु साम, दाम, दण्ड भेदादि प्रयुक्त थे। तलवार, तरुणी, दौलत, दमन आदि चतुर्धा शक्तियों का प्रयोग उस ओर था।

इधर सनातन-धर्म रक्षक शक्तियाँ बिखर चुकी थीं। अपने-अपने घर के गर्भगृह में शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन, बौद्धादिक भिन्न-भिन्न रूप से गोपनीय-प्रयत्नतः सिद्धान्तानुयायी होकर गुप्त प्राय तथा लुप्त प्राय हो रहे थे। एक दूसरे की दूरियाँ बढ़ती जा रही थीं। धर्म के नाम पर दाहिना हाथ बायें हाथ से शंकित था। ऐसी विषम परिस्थिति में अपनी मति को बिल्कुल स्वतन्त्र रख कर "मति अनुसार राम-गुण गाऊँ' यह निश्चय करके ही कहने वाला "कवि न होऊँ नहिं चतुर कहाऊँ" के रूप में कवि के सामने उपस्थित थे। सम्भवतः इसी कारण गोस्वामी जी को श्रीरामचरित मानस में शताधिक बार लिखना पड़ा है कि

वन्दउ राम नाम रघुवर को।
राम सो अवध नृपति सुत सोई।
कौशलेश दशरथ के जाए।

इत्यादि से किया है। गगन गिरा गम्भीर भई, हरणि शोक सन्देह। वह गगन गिरा थी---

अंशन सहित मनुज अवतारा।
लैहहुँ दिनकर वंश उदारा॥

और "भये प्रकट कृपाला दीन दयाला, कौशल्या-हितकारी" बस वही राम नाम रघुवर का गुण मति अनुसार गाऊँ। इसी संकल्प का प्रकल्प प्रकट है। गोस्वामी जी के काव्यामृत मन्थार के रूपमें यह 'श्रीरामचरित मानस' राजमहल से लेकर दीन कुटीर तक स्थान-स्थान पर पहुँच चुका है।

आज मानस रचना काल के ४०० वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। मानस चतुःशती के अवसर में पहुँच कर भी "कोटि खल कुमति सुधारी" वाली नाम गीति को कोटि संख्या से परे छटकने वालों की कुमति, सुमति में परिणत, मानस पूजने से नहीं, वरन् मानस के मनन से सम्भव है। जनमानस शुद्धिहेतु मानस बहिष्कार के स्थान पर मानस-स्वीकार तथा शिरोधार्य, लाभप्रद होगा।

सम्पादक---

गोस्वामी तुलसीदास जी एक भविष्य द्रष्टा तथा युगप्रवर्तक एवं

कलिकाल के लोगों को लोक-परलोक सुधारने की शिक्षा देने वाले महाकवि थे। उन्होंने भारत के अत्यन्त अशान्तवायु मंडल में रह कर भी 'स्वान्तः सुखाय, अपने ग्रन्थ 'श्रीरामचरितमानस" जैसे महाकाव्य की रचना कर गये। यह बहुत बड़ी बात हुई।

इस लेख के विचारवान लेखक श्री दर्शन जी ने पत्रोत्तर के रूप में मानस के सार्वभौम प्रचार का समर्थन किया हैं वह ध्यान देने योग्य है। निस्सन्देह इस मानसग्रन्थ के मनन से भारत ही नहीं वरन् सम्पूर्ण संसार का जन-मानस सुधर सकता है। ऐसः अमर-ग्रन्थ किसी अन्य भाषा में 'निभूतों न भविष्यति की उक्ति को चरितार्थ करता है ? इस मानस चतुःशती के अवसर पर इसका भारत के नगरों और ग्रामों में घर-घर प्रसार और प्रचार अत्यन्त आवश्यक है।

"मानस से ही जन-मानस का उद्धार"

[श्री यशपाल कुमार "एडवोकेट"]

आज मानव दिग्भ्रांत है। अशांत है भक्त सो गया है। नाना पंथ, नाना सम्प्रदाय, नाना मत– मतान्तरों में उलझा मानव अपने कर्त्तव्य से च्युत हो स्वधर्म से डिग गया है। संस्कार से शून्य मानव पशुवत आचरण कर रहा है। दिशाहीन, लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन-श्रौत, स्मार्त कर्मों से हीन अमर्यादित, उच्छृंखल, उद्धत हो विनाश एवं जन्म जरा-व्याधि के गर्त में जा रहा है।

धन्य है संत तुलसी जिसने मानवों के परम कल्याण, निःश्रेयस सिद्धि, की भावना से प्रेरित होकर, निष्काम कर्म, निष्काम भक्ति, निष्काम ध्यान, निष्काम ज्ञान के माध्यम से जन-जन का कल्याण करने हेतु, सरल भाषा में समस्त श्रौत, स्मार्त कर्मों का, संस्कार विधि का, वर्ण एवं आश्रम की मर्यादा का निरूपण, चरित्रनायक मर्यादा पुरुषोत्तम राम के रूप में करके मानव मात्र के लिये शांति का मार्ग प्रशस्त किया है। हमारे ऋषि महर्षि मनीषियों ने गर्भाधान, पुंसवन, सीमंतोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्न-प्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णछेदन, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन, विवाह, वान-प्रस्थ, सन्यास एवं अन्येष्टि आदि षोडश सस्कारों की सुन्दर व्यवस्था इसीलिये की थी ताकि मानव के तन-मन का उत्तरोत्तर शोधन हो जिससे वह अनेक योनियों की मलिनताओं से शुद्ध होता हुआ अपने स्व स्वरूप में स्थित हो सके। मानव कर्मानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके रूपमें विभक्त चार वर्ण के माध्यम से पारस्परिक सहयोग एवं प्रेम-पूर्वक निष्काम कर्म काआश्रय लेकर निःश्रेयस सुलभ करे।

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास रूप में चारों आश्रम-धर्मों का पालन करता हुआ अंत में आत्मस्थित हो आवागमन के बंधन से सदा-सर्वदा के लिये मुक्त हो सके।

संत तुलसी ने जिस सुन्दर ढंग से मानव-कल्याण हेतु ऋषि-महर्षियों द्वारा प्रदत्त इन सुव्यवस्थाओं को मानस में संजोया है वह देखते ही बनती है। "नानापुराणनिगमागम-सम्मतं यद् रामायणे निगदितं क्वचिद-न्यतोऽपि ॥" संत तुलसी के इस कथन का मानस में क्रमागत प्रमाण संकार यों है--

गर्भाधान—राजा दशरथ उत्तम पुत्रों के लिये वशिष्ठ से आज्ञा प्राप्त करके श्रृंगी ऋषि द्वारा शुभ यज्ञ कराते हैं। अग्निदेव का प्रसाद तीनों रानियों को वितरित किया जाता है। प्रसाद से रानियाँ गर्भवती होती हैं। यज्ञ का ही प्रभाव था कि कालांतर में महान तेजस्वी संतानें उत्पन्न होती हैं एवं यज्ञ का संकल्प सत्यसिद्ध होता है।

श्रृंगी रिषिहि वसिष्ठ बोलावा।
पुत्रकाम सुभ जाग करावा॥
भगति सहित मुनि आहुति दीन्हें।
प्रगटे अगिनि चारु कर लीन्हें॥
जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा।
सकल काज भा सिद्ध तुम्हारा॥
यह छबि बाँटि देहु नृप जाई।
जथा जोग जेहि भाग बनाई॥
× × × ×
एहि बिधि गर्भ सहित सब नारी।
भईं हृदयँ हरषित सुख भारी॥

नामकरण—पुत्रों के जन्म के पश्चात चारों भाइयों के नाम-संस्कार की विधि होती है। गुरु वशिष्ठ गुणों के आधार पर नाम रखते हैं। जिन गुणों के आधार पर नाम रखे जाते हैं भविष्य में वे अपने गुणों द्वारा नाम को सार्थक करते हैं।

नाम करन कर अवसरु जानी।
भूप बोलि पठये मुनि ग्यानी॥
करि पूजा भूपति अस भाषा।
धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा॥
× × × ×
धरे नाम गुरु हृदय विचारी।
वेद-तत्व नृप तव सुत चारी॥

राम के गुणों के संबंध में तुलसी कहते हैं।—
हिम गिरि कोटि अचल रघुवीरा।
सिंधु कोटिसत राम गंभीरा।"

चूड़ाकरन—बालकों के बड़े होने पर गर्भ के अशुद्ध सिर के बाल साफ करने हेतु, शुद्धि के प्रयोजन से चारो भाईयों का चूड़ाकरन संस्कार होता है।

कछुक काल वीते सब भाई।
वड़े भये परिजन सुखदाई॥
चूड़ाकरन कीन्ह रघुराई।
विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई॥

उपनयन एवं वेदारम्भः—

भए कुमार जबहिं सव भ्राता।
दीन्ह जनेऊ गुरु-पितु-माता॥
गुरु गृहँ गये पढ़न रघुराई।
अल्पकाल विद्या सब आई॥

"ज्यों ही सव भाई कुमारावस्था के हुये, त्यों ही गुरु-पिता-माता ने उनका यज्ञोपवीत-सस्कार कर दिया। श्री रघुनाथ जी (भाईयों सहित गुरु के घर में विद्या पढ़ने गये और थोड़े ही समय में उनको सब विद्यायें आ गयीं।" प्रातः काल उठकर माता-पिता-गुरु को मस्तक नवाते हैं।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

धनुर्विद्या सीखने विश्वामित्र गुरु के साथ जाते हैं। समस्त शस्त्र-ज्ञान प्राप्त करते हैं। गुरु-चरणों की सेवा करते हैं। नित्य संध्यावंदन करते हैं।

मुनिवर सयन कीन्हि तब जाई।
लगे चरन चापन दोउ भाई॥

रात वीतने पर अरुण शिखा) मुर्गे का शब्द कानों से सुनकर लक्ष्मण जो उठे। जगत् के स्वामो सुजान श्री रामचन्द्र जी भी गुरु से पहले ही जाग गये। सब शौचक्रिया करके वे जाकर नहाये। फिर संध्या-अग्नि होत्रादि) नित्यकर्म समाप्त करके उन्होंने मुनि को मस्तक नवाया।

"उठे लखन निसि विगत,
अरुनसिखा धुनि कान।
गुरु ते पहलेंहिं जगतपति
जागे राम सुजान॥
सकल सौच करि जाइ नहाये।
नित्य निबाहिं मुनिहि सिर नाये॥

विवाह—

कह मुनि सून नरनाथ प्रबीना।
रहा बिबाह चाप आधीना॥
टूटतही धनु भयउ विबाहू।
सुर-नर-नाग विदित सब काहू॥
तदपि जाई तुम्ह करहु,
अव जथा बंश व्यवहारु।

बूझि बिप्र कुलवृद्ध गुरु,

बेद बिदित आचारु ॥

मुनि ने कहा—हे चतुर नरेश ! सुनो ! यों तो विवाह धनुष के अधीन था, धनुष के टूटते ही विवाह तो हो गया। देवता, मनुष्य और नाग सब किसी को यह मालूम है। तथा तुम जाकर अपने कुल का जैसा व्यवहार हो, ब्राह्मणों, कुल के बूढ़ों और गुरुओं से पूछकर और वेदों में वर्णित जैसा आचार हो वैसा करो। 'भगवान राम ने आजीवन श्रुति-पथ का पालन किया।"

श्रुति पथ पालक धर्म धुरंधर।
गुणातीत अरु-भोग पुरंदर ॥

धन्य है संत तूलसो जिसने मानस में इन संस्कारों की वैदिक पुण्य-परम्परा को अक्षुण्ण रखा जिसके पालन से ही राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न सदृश महान यशस्वी विभूतियां हुईं। आज भारत ने संस्कार छोड़ दिया। वैदिक पथ से भ्रष्ट होने के कारण हो सम्पूर्ण राष्ट्र आचार हीन हो गया है। संस्कारों के पालन से ही राष्ट्र का पुनरुत्थान सम्भव है। इसकी वैज्ञानिकता संदेह से परे है। कारण संस्कारों द्वारा ही मानव नाना जन्मों को मलिनताओं से शुद्ध हो तत्व लाभ करता है। अब हम मानस में वर्णित वर्णधर्म पर विचार करेंगे।

वर्ण-धर्म—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र चारों वर्ण जब गुण कर्म के अनुसार परस्पर सहयोग करते हैं तभी शाँति एवं विकास होता है। देश-समाज भी सुव्यवस्थित हो जाता है।

ब्राह्मण—धर्म पालन में वेदाध्यन से ही ब्राह्मण शोभित होता है अन्यथा वह शोचनीय है। विषयासक्ति से वह अधम गति को प्राप्त होता है।

सोचिउ विप्र जो वेद विहीना।
तजि निज धरमु विषय लयलीना ॥

क्षत्रिय—राजा (क्षत्रिय) नीति एवं प्रजा कल्याण में ही शोभित है। नीति का उलंघन करने से एवं प्रजा पालन के दायित्व से च्युत होने से वह भी शोचनीय है। शासक का कर्त्तव्य प्रजा पालन में ही है।

सोचिअ नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समानत

वैश्य—वैश्य का कर्त्तव्य है कि वह त्याग एवं अराधना पूर्वक समाज में रहे। समाज के शोषण, संग्रह एवं

स्वार्थ की भावना से मुक्त रहे। आज भारत की दुर्दशा का कारण यही है कि वैश्य कालाधन, कालाव्यापार, जमाखोरी व तस्करी में रत है जिसका भयावह परिणाम सारा राष्ट्र भुगत रहा है एवं वैश्यवर्ग भी अशांत है। मालिक श्रमी में वर्गसंघर्ष है। संत तुलसी कहते हैं—

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू।
जो न अतिथि सिव भगत सुजानू॥

शूद्र–शूद्र तीनों वर्णों की निष्काम भाव से सेवा करता हुआ निःश्रेयस (मोक्ष) सुलभ कर सकता है लेकिन आज शूद्रवर्ग सेवाधर्म से विमुख एवं मानप्रिय हो गया है अतः शोचनीय है।

सोचिअ शूद्र विप्र अवमानी।
मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी॥

इस प्रकार गुण–कर्म के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शुद्र चारों भाई पारस्परिक सहयोग से समाज का सचालन करते रहें। इसमें घृणा का भाव नहीं है। परंतु आज घृणा शासन द्वारा ही पैदा की जा रही है।

आश्रम व्यवस्था—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास के क्रमिक सोपानों को पार करता हुआ ही मानव सुखी हो सकता है। इन व्रतों के उलंघन से मानव शोक का ही विषय रह जाता है। आज स्थिति ऐसी ही है।

ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचारी की शोभा वीर्य धारण करते हुये स्वाध्याय एवं गुरुसेवा में ही है। इससे विमुख ब्रह्मचारी शोक का पात्र है। आधार ही गलत हो जायगा तो जीवन रूपी भवन चरमराकर टूट जायगा। अतः संत तुलसी कहते हैं। —

सोचिअ वटु निज व्रतु परिहरई।
जो नहि गुरु आयसु अनुसरई॥

गृहस्थ—गृहस्थ का यही धर्म है कि वह निष्काम भावना से पंच-महायज्ञ का अनुष्ठान करते हुये तीनों आश्रमों की सेवा करे एवं कर्म से विमुख न हो। कर्म–पथ त्याग कर बाहर से साधू का वेष बनाने वाला मनुष्य शोक का पात्र है। संत के शब्दों में—

सोचिअ गृही जो मोहबस।
करइ कर्म पथ त्याग।

वानप्रस्थ—वानप्रस्थी ५० वर्ष की आयु में गृहस्थी से निवृत हो

गृहस्थी में स्त्री-सहित रहता हुआ, समस्त भोगों को भीतर बाहर से त्याग कर अपने को ईश-उपासना तथा तपस्यामें कसे। इसके विपरीत आचरण करने वाला शोक का ही पात्र है। भारत में पिता-पुत्र कलह का बर्तमान कारण इस वैदिक आज्ञा का उलंघन ही है।

वैखानस सोइ सोचै जोगू।
तपु बिहाई जेहि भावइ भोगू।।

सन्यास—सन्यासी का यही धर्म है कि वह विषयों से सम्यक रूपेण आसक्ति हटाकर निरंतर प्रभु चिंतन करे एवं समाज को सन्मार्ग में चलावे। विवेक वैराग्य के सागर में निमग्न होता हुआ ज्ञानालोक से जन-मन के हृदय में दया, प्रेम, त्याग के भाव भरे। इसके विपरीत सन्यास का वस्त्र धारण कर विषयासक्त, प्रपंचासक्त सन्यासी सोचने योग्य हैं।

सोचिअ यति प्रपंचरति।
बिगत विवेक विराग।।

नारी—वह नारी शोचनीय है जो स्वेच्छाचारिणी, छली एवं कुटिल कलहप्रिय है। पति को सर्वस्व समझने वाली नारी शोभनोय है।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी।
कुटिल, कलह प्रिय इच्छाचारी।।

भारत का कल्याण निःसंदेह मानस में निहित इन वैदिक आदेशों के पालन से ही सम्भव है। संस्कार, वर्ण-व्यवस्था एवं आश्रम-व्यवस्था इतनी ठोस तथा वैज्ञानिक आधार शिला में टिकी है कि इससे मानव मात्र का कल्याण सम्भव है। भगवान ने इन व्यवस्थाओं की रक्षा अपने शासन-काल में की जिसका सुफल राम-राज्य की स्थापना के रूप में हुआ--

राम का जन्म ही वैदिक धर्म के रक्षार्थ हुआ था। "बेद धर्म रक्षक सुन भ्राता" ऐसा राम के जन्म का हेतु रावण से भक्त विभीषण ने कहा। वैदिक धर्म पालन का सुफल तुलसी के शब्दों में--

राम राज वैठे त्रैलोका।
हरषित भये, गये सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई
राम प्रताप विषमता खोई।।
दो०—बरनाश्रम निज-निज धरम,
निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहि सुखहिं,

नहिं भय सोक न रोग ॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा ।
राम राज नहिं काहुहिं व्यापा ॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती ।
चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति-नीती ॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी ।
त्रेताँ भई कृतजुग कै करनी ॥

वेनी कवि ने मानस में समावेशित इन वैदिक आदेशों के संबंध में ठीक ही कहा है—

बेदमत सोधि, सोधि-
सोधि कै पुरान सबै,
संत औ असंतन को
भेद को बतावतो ।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली
जीव, कौन राम नामहू की चरचा
चलावतो ॥
'बेनी' कवि कहै मानो-मानो हो
प्रतीति यह, पाहन हिये में कौन प्रेम
उपजावतो । भारी भवसागर उतारतो
कवन पार, जो पै यह रामायन
तुलसी न गावतो ॥

———

श्री तुलसी-मानस का विशिष्ट पुण्य पर्व

[श्री जगन्नारायण देव शर्मा 'कविपुष्कर' शस्त्री]

संवत सोरह सौ एकतोसा।
करऊं कथा हरिपद धरि सीसा॥
संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसो।
रामचरित मानस कवि तुलसी॥

यों तो तुलसी-जयन्ती, विगत ५० वर्षों से मनाई जा रही है, किन्तु इस वर्ष उसका भारत ही नहीं, समस्त विश्व में यत्र-तत्र सर्वत्र विशेष मान-महत्व प्रदर्शित हो रहा है। यह हिन्दी-हिन्दू और हिन्दुस्तान के लिए महान गौरव की बात है। इस अभूतपूर्व साहित्यिक और धार्मिक जागरण का एक ही प्रधान कारण है—वह यह कि यह वर्ष मानस चतुःशती महोत्सव का आनन्ददायी वर्ष है, जिसका कि स्वाभाविक आन्दोलन आदर्श जन-जीवन में संजोवनी - शक्ति भर रखा है। यही मानसकार और मानस का 'यत्परोनास्ति' उद्देश्य रहा है।

उपर्युक्त आध्यात्मिक ध्येय ने मुझे भी व्यासकाशी-रामनगर में अपने-'हर हर महादेव मन्दिर' पर एक स्थायी व्यास-पीठ 'श्री तुलसी मानस मंच' नाम से स्थापित करने को प्रोत्साहित किया। अस्तु वह बड़े हर्षोल्लास के साथ रविवार श्रावण शुक्ला सप्तमी सं० २०३० को सुसम्पन्न भी हो गया।

उक्त रामनगरमें दो ढाई शताब्दियों से श्रीमान् महाराज काशी नरेशों के राज्य की राजधानी रही है, जो सभी गोस्वामी तुलसीदाद तथा उनके अमर ग्रन्थ—श्री रामचरित मानस (रामायण) के परमभक्त तथा अनुयायी थे। उनके संरक्षण में जो रामलीला चलाई गयी थी, वह आज भी पुरानी परिपाटी पर चल रही है। इस लीला की भारत ही नही, अपितु समस्त विश्व में भूरि-भूरि प्रशंसा हो चुकी है। वास्तव में

इस लीला के द्वारा रामनगर में राम राज्य की कल्पना जैसी आदर्श शासन-व्यवस्था संचालित करने की सदिच्छा थी, जो भारतीय समस्त देशी नरेशों के लिए वांछनीय एवं अनुकरणीय बन सके। इसका फल यह हुआ कि यहां के भूतपूर्व नरेशों को, देशके सभी राजे-महरजे बड़े आदरको दृष्टिसे देखते तथा उनसे मिलने में आनन्द अनुभव करते थे।

सन् १९०५ के दिल्ली दरबार में भारत-सम्राट सप्तम एडवर्ड के तत्कालीन वाइसराय (प्रतिनिधि) गवर्नर जेनरल लार्ड कर्जन ने भी महाराज श्री प्रभुनारायण सिंह को काशी-विश्वनाथ का प्रतिनिधि मानकर विशेष सम्मान प्रदान किया था। यह महाराज बड़े नियम, संयम और मनोयोग पूर्वक रामलीला में भाग लेते थे। उनके समय में जैसी राजसी रामलीला हो गयी, वैसी अब कहां होने की।

मेरे पूर्वज और हम सभी वंश परम्परा से काशीनरेशों से परिपालित और सम्मानित होते रहे। इसलिए हम-लोगों का कर्तव्य है कि उनके अनुष्ठित 'रामराज्य' प्रचार में श्री तुलसी और मानस को माध्यम बनाने में सहायक बनें। अस्तु! इस वर्ष तुलसी जयन्ती के शुभ दिन एक मच बनाकर उसी सद्भावना की प्रतिष्ठा की गयी।

संवत् १९८०में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा जो कि हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि बनानेकेलिए कृत-संकल्प, एवं भारत में चोटी की संस्था है—उसने बड़ी ही सफलता के साथ पहली तुलसी जयन्ती मनायी। मैं भी उसके सदस्य होने के नाते उसमें उपस्थित हुआ था। उस महोत्सव को देखकर मैंने मन भी रामनगर में भी तुलसी-जयन्ती मनाने का निश्चय किया। दूसरे ही वर्ष अपने कुछ मित्रों और सहयोगियों को लेकर बलुआघाट स्थित बड़ी महारानी की धर्मशाला में तुलसी-जयन्ती का उत्सव मनाया। इस कृत्य से यहां के राजा-प्रजाजन सभी प्रसन्न हुए।

तब से उत्तरोत्तर इस जयन्ती की सर्वप्रियता बढ़ी,पर अब कारणवश मेरे काशी में रहने के कारण उसमें शिथिलता हो गयी थी। इसलिए मुझेउसे स्थायी बनाने

के लिए उत्तोपाय करना पड़ा। मैंने काशी और रामनगर के कितने ही महानुभावों से मंत्रणा कर उनसे सम्मति और शुभकामना ली और आयोजन को प्रामाणिक बनाने के लिए नागरी-प्रचारिणी-सभा, वाराणसी के प्रधान मन्त्री पं० सुधाकर पाण्डेय को एक पत्र लिखकर कुछ प्रश्न किये। किन्तु वह दिल्ली में विराटरूप से मनाई जाने वाली जयन्ती में भाग लेन चले गये। अतः उनके सहायक मंत्री महोदय पं० शंभुनाथ जी वाजपेयी ने मुझे यथार्थ उत्तर देने की कृपा की। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। वही प्रतिलेख इस प्रकार है :—

(पत्रोत्तर)

४३३।८१ नागरी प्रचारिणी सभा,

वाराणसी—१-८-१९७३

कविपुष्कर जी !

सादर प्रणाम !

२७।७ का पोस्ट कार्ड मिला। सभा ने सर्वप्रथम 'तुलसी-जयन्ती' का आयोजन, सं० १९८० में किया था। इसके सभापति स्व० महाराजा रामपाल सिंह जी थे। इस अवसर पर सम्पूर्ण तुलसी-ग्रन्थावली का प्रकाशन—तीन खण्डों में में किया गया था।

श्रावण शुक्ला ७ (सप्तमी) गोस्वामी जी की जन्म-तिथि है। किन्तु १९८० विक्रम में उनका शरीरान्त हुए ३०० वर्ष पूरे हुए थे। तब से नियमित रूप से सभा में प्रति वर्ष श्रावण शुक्ला ७ को तुलसी-जयन्ती मनायी जाती है।

विनीत—

शंभुनाथ वाजपेयी

(सहायक मंत्री)

पता—

श्री पं० जगन्नारायण देव जी शर्मा, कविपुष्कर

महाविद्या मंदिर, १४।३४

पाण्डेयघाट, वाराणसी।

उपर्युक्त पत्रोत्तरसे जयन्ती सम्बन्धी सभी वृतान्त स्पष्ट हो गये। ५० वर्ष पुराने इस इतिहास से सर्व-साधारण को वास्तविक तथ्य अवगत हो जायगा। जयन्ती का अर्थ ही है, जन्म-दिवस, मृत्यु दिवस नहीं। जो लोग किसी नेता आदि के मृत्यु दिवस पर जयन्ती मनाने की घोषणा करते हैं—उन्हें अपनी भूल सुधार लेनी चाहिए।

गोसाईं जी के संबंध में एक दोहा न जाने किसका बहुत बर्षों से प्रचलित हो रहा है ! वही लोगों को घपले में डाल देता है । इसपर अनक वर्षो से अन्वेषण चलता रहा । अन्तमें विद्वानों ने यही प्रमाणित किया कि श्रावण शुक्ला सप्तमी तो गोस्वामी जी का जन्म दिन है—उनका मृत्यु-दिवस तो वह है जिस दिन कि शताब्दियों से, श्री टोडरमल जी के यहां से वर्षी का रसम सीधा सामान, ब्राह्मणों को दिया जाता है ।

इस वक्तव्य के अन्त में अब मुझे यही कहना पड़ता है कि गोस्वामी जी अवतारी रससिद्ध कवीश्वर थे—

उन्होंने रामचरित मानस की रचना 'स्वान्तः सुखाय' करके समस्त संसार को विश्वशांति का सन्देश, उपदेश एवं आदेश दिया एवं अविरोधी धर्म का प्रचार कर मानवता की रक्षा और विकास का स्वरूप खड़ा कर दिया । सभी वेद-पुराण-शास्त्रों का सारतत्व निचोड़ कर धर्म, समाज और राजनीति की धारा का परिष्कार किया तथा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की विमल पताका फहरायी । इत्यलम् ! ७-८-७३

जयन्ति ते सुकृतिनो,
रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये,
जरामरणजं भयम् ॥

—:०:—

अब चितचेति, चित्रकूटहि चलु !

कवियों का चित्रकूट—वर्णन,

[श्री बनारसी लाल 'आर्य']

उत्तर प्रदेश के तीर्थस्थानों में 'चित्रकूट' वह पुण्यभूमि है जहाँ पुण्य-सलिला-पापनाशिनो पयस्विनी बह रही है। वहाँ स्थान-स्थान पर सुन्दर प्रपात एवं सघन वृक्षों की शीतल-छाया में तपस्वी साधु-कुटियों में धुनी रमाये बैठे रहते हैं। वन में मृगों का किलोल-रंग विरंगी पक्षियों की मधुर स्वर लहरी, पथिकों को वरवस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। चारों ओर पर्वतों के ऊँचे शिखरों पर मंदिरों की झांकी मन हर लेती है। जहाँ भगवान् रामचन्द्र ने भी अपने बनवास का अधिकांश भाग यहीं व्यतीत किया था। इसी कारण भारत के करोड़ों यात्री प्राणियों को, आध्यात्मिक आनन्द प्राप्त करने के लिए उस चित्र-कूट के घोर जंगल-पहाड़ों में भ्रमण करने पर भी वहाँ से लौटने की इच्छा नहीं होती। उन्हें यहाँ सन्तोष प्राप्त होता है। तृप्ति होती है। यहाँ के प्रत्येक रजकण को मस्तक पर लगा कर ही प्राणियों को आनन्द का अनुभव होता है। चित्रकूट में कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ की प्राकृतिक सुन्दरता प्राणी को भौतिक दुःखों से दूर कर सुख-शान्ति व आनन्द का अनुभव न कराये। चारो ओर पलासके मनोहर वृक्ष, जंगल में चैत्र मास में, अपनी रंगोन चादर बिछाये रहते हैं। जिधर देखिए कोसों तक टेसू की लाली, आम की डालों पर कोयल का कूक भरा अनुराग-चित्त को अनायास हर लेता है।

वन-वृक्षों में हरा, बहेरा, आँवला, चिरौजी, खैर, तेन, पनस, महुआ, बैर मकोय, बगल से गुजरने वाले पथिकों को कुछ क्षण के लिए रोक लेते हैं। मृगछौने मनुष्यों को देखते ही छलांग

मार कर पर्वत मालाओं के बीच छिप जाते हैं। मन्दाकिनी का कल कल निनाद कानों को पवित्र-कर देता है। प्रमोद बन शोर्षा वन, सीताकुण्ड, स्फटिक-शिला आदि पहाड़ियों पर जाने से भूख-प्यास भी नहीं लगती। एक घूट शोतल जल अमृत का काम करता है। कितना ही चंचल चित वाला व्यक्ति हो, किन्तु यहाँ वह शान्त हो जाता है। अनुसूया जी के आश्रम की रमणीयता अपनी ओर आकर्षित कर उन बड़े-बड़े नगरों के कोलाहल पूर्ण सुख को अपूर्ण प्रमाणित कर देती है। गुप्त गोदावरी की विचित्रता, हनुमान धारा का मधुर अमृत सा जल तथा पर्वतीय दृश्य मन को मोह लेते हैं। तभी तो वह ऋषियों की तपोभूमि रही है और आज भी यहाँ अच्छे-अच्छे साधु-संत आकर निवास कर रहे हैं। देवांगनाकी सीढ़ियां-छोटे-छोटे सोतों का बहना क्रीड़ा करते हुए पक्षियोंके झुण्ड, कोटतीर्थ की पर्णशालायें, प्राचीन ऋषियों की भूमि होने का प्रमाण देती हैं। भरत कुण्ड, लक्ष्मण पहाड़ी, कामदा गिरि को शोभा, वानरों का किलकिलाना, पयस्विनीमें चंचल मछलियों की क्रीड़ा आदि किसका मन नहीं मोह लेगा। यहाँ की महिमा का वर्णन कवि को वाणो से परे है। कामदागिरि, महेन्द्रगिरि, लक्ष्मणगिरि तथा उनके मध्य कल्लोल करती पुण्यसलिला शान्तिदायिनी पयस्विनी का जल पान करने वाले धन्य वे लोग—जो यहाँ की शीतल वायु का स्पर्श कर जीवन सफल करते हैं। चित्रकूट का वर्णन करते हुए, आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने स्वयं भगवान रामचन्द्र के मुख से वर्णन कराया है।

१—केचिद्रजत सङ्काशा केचिद्रुधिर सन्निभाः।
२—पीतमांञ्जिष्ठ वर्णाश्च केचिन् मणिवरप्रभाः ॥
३—पुष्पार्क केतकाभाश्च केचिज्ज्योतनिरस प्रभाः।
विराजन्ते चलेन्द्रस्य देशाधातु विभूषिताः ॥
४—नातामृगगण द्वोपितरक्ष्वृक्षगणैवृतः।
अदुष्टैर्भात्ययं शैलो बहुपक्षि समायुतः ॥

४-शैलप्रस्थेषु पश्येमान् रोमहर्षणान ।
किन्नरान् द्वन्द्वशो भद्रे ! रममाणान् मनस्विनः ॥११॥
५-शाखावसक्तान् सङ्गाश्च प्रवण्यम्बराणि चः ।
पश्य विद्याधरस्त्रीणां क्रीडोद्देशाद् मनोरमान् ॥१२॥

× × × ×

६-वैदेहि रमसे कच्चिच्चित्रकूटे मया सह ।
पश्यन्ति विविधान भावान् मनोवाक्कायसंयुतान् ॥१८॥
७-भित्त्वेव वसुधां भाति चित्रकूटे समुत्थितः ।
चित्रकूटस्य कूटोऽसौ दृश्यते सर्वतः शुभः ॥२३॥

× × × ×

८-मृदिताश्चापविद्धाश्च दृष्यन्ते कमलस्रजः कामिभिर्वनिते पश्यफला-निविपिधानि चः । महाकवि कालिदास ने रघुवंश महाकाव्य में भी चित्रकूट का विशद वर्णन किया है ।

चित्रकूट बनस्थश्च पतितः स्वर्गतो गूरोः ।
लक्ष्म्या निमन्त्रयां च्यक्रेतमनुच्छिष्ट सम्पदः ॥

आगे गोस्वामी तुलसीदास जी ने राम के दर्शन हेतु व्याकुल होकर कहा है :—

मन की यह साध लिए वह
अब चितचेति चित्रकूटहिं चलु (विनय पत्रिका)

और चित्रकूट के लिये चल पड़े । चित्रकूट घाट पर गोस्वामी तुलसीदास जी ने चन्दन घिसते हुये भगवान का दर्शन पाया—

दो०—चित्रकूट के घाट पर, भइ संतन की भीर ।
तुलसिदास चन्दन घिसे तिलक देत रघुबीर ॥

मानस में तो वह स्वयं भगवान राम के मुख से वर्णन करा रहे हैं—

चौ०—लखन दीख पय उतर करारा ।
चहुँ दिशि फिरेहु धनुष जिमि नारा ॥
नदी पनष सर सम दम दाना ।

सकल कलुषि क्ल सा अज नाना ।।
चित्रकूट जन अचल अहेरी ।
चुकइ न घात मारत मुठ भेरी ।।

———

चौ०—कह मुनि सुनेहु भानु कुल नायक।
आश्रम कहे हु सदा सुखदायक।
चित्रकूट गिरि करइ निवासू ।।
तँह तुम्हार सब भाँति सुपासू ।।
सैल सुहावन कानन चारू।
करि केहरि मृग विहग विहारू ।।
नदी पुनीत पुरान बखानी ।
अत्रि-प्रिया निज तप बल आनी ।।
सुरसरि घाट नाम मंदाकिनी ।।
जबते आय रहे रघुनायक।
तव ते भा वन मगल दायक ।।
फूलहि फूल विटप विधि नाना।
मंजुल तरुवर बेलि बिताना ।।
सुर तरु सरिस सुभाय सुहाये।
मनहु विवुधवन परि हरि आए ।।

दो०—नील कंठ कल कंठ शुक, चातक चक्क चकोर,
भांति भांति बोलहि विहग, श्रवन सुखदचित चोर।

चौ०—करि केहरि कपि कोल कुरंगा ।।
विगत वैर विहरहिं इक संगा।
फिरत अहेर राम छबि देखी।
होहि मुदित मृग वृन्द विशेषी ।।

विबुध विपिन जहं लगि जग मांही।
देखि राम बन सकल सिहाहीं।
सुरसरि सरस्वति दिनकर कन्या।
मेकलसुता गोदावरी धन्या।
शैल हिमांचल आदिक जैते।
चित्र कूट जस गावहिं तेते॥
विन्ध्य मुदित मन सुख न समाई॥
बिनु श्रम विपुल बड़ाई पाई।

दो०—चित्रकूट के बिहग मृग, बेलि विटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहि देव दिन राति॥

(क)

आगे गोस्वामी जी ने कवितावली में भी चित्रकूट का वर्णन इस प्रकार किया है :—

जहां बन पावन सुहावनो विहंग मृग।
देखि अति लागत अनन्द खेत खूट सो॥
सीताराम लखन निवास वास मुनिन को।
सिद्ध साधू साधक सबै विवेक बूट सो॥
झरना झरत नीर शीतल पुनीत वारी,
मंदाकिनी मंजुल महेश जटाजूट सो॥
तुलसी जो राम सो सनेह सांचो चाहिये तो।
सेइये सनेह सों विचित्र चित्रकूट सो।

———

कवितावली, उ० का०

गीतावली में तो गोस्वामी जी चित्रकूट के सम्बन्ध में कहते हैं—

लोने लाल लखन सन्मान राम लोनी सिय
चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु तट हैं।

गोरे सावले शरीर पीत नील नीरजसों,
प्रेम रूप सुषमा के मनसित सर हैं ।।
लोने नख सिख निरुपम निरखत जोग,
बड़े उर कंधर विशाल भुज धर हैं।
लोने लोने जटनि के मुकुट लोने,
लोने वदनि जीते केरि सुधाकर हैं,
प्रिया प्रिय वन्धु को दिखावत विटपवेलि,
मंजुकुञ्ज सिलावल दल फूल फर हैं।

(ख)

ऋषिनके आश्रम है सरा मृगनाम फरै ।
लगी गधु सरिता फरत निरजर है।
नाचत वरहनीके गावत मधुप-पिक ।
बोलत विहंग नभ, जल, थल पर है ।।
प्रभुहि विलोकि मुनिगन पुलकि कहत ।
भूरि भाग भये सब नीच नारि-नर हैं ।।
तुलसी सो सुख लाहु लूटत किरात बोल ।
जाको सिसकत सुरबिधि हहिहर हैं ।।

———

गीतावलीसे—

सब दिन चित्रकूट नीको लगत,
वरषा ऋतु प्रेवस विशेष गिरि देखन मन अनुरागतब ।
चहु दिसि बन संघन्त, बिहंग मृग बोलत सोभा पावत ।
जन सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा, सकल सुख छावत ।।
सोहत स्याम जलद मृद ओरत धातु रंग मगे सृंगकि ।
सिरथ परसघन घटहिं मिलति बग पाँति सोहत छबि कवि वरनी ।
आदि बराह बिहरि वारिदमनो उठ्यो है दसन धरि भरनी ।
जल जुत विमल सिलनी झलकत नभ बन प्रति बिंब तरंग ।
मानहुँ जग रचना विचित्र बिलसाते विराट अंग-अंग ।।

चित्रकूट व्यथित तथा विपत्तिग्रस्त प्राणी के लिए सहायक है। एक बार कवि रहीम दिल्ली के सुख वैभव से विरक्त हो चुके थे। सम्राट अकबर भी उनके प्रतिकूल होने लगा था। समय की गति देख 'रहीम सीधे चित्रकूट पधारे और गुप्तवास की दृष्टि से एक भड़भूजे के यहां भाड़ झोकने का काम करने लगे। कुछ काल व्यतीत होने पर अकबर को रहीम के मोह ने सताया। उसे पता चला कि रहीम चित्रकूट जाने की इच्छा प्रकट करते थे। अकबर स्वयं गुप्तचरों को साथ ले चित्रकूट आया।

उसे मालूम हुआ कि रहीम को शकल का एक बूढ़ा भड़भूजे की दूकान पर भाड़ झोकता है तो अकबर उसी राह चल पड़ा-वह उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ बूढ़ा भाड़ झोक रहा था।

बादशाह ने एक पद पढ़ा :—

जाके सिर अस भार,
सो झोकत कस भाड़॥

इस पर रहीम ने कैसा जमता उत्तर दिया सो निम्नलिखित पद से पता चलता है। उन्होंने कहा :—

रहिमन उतरे पार भार झोंकि सब भाड़ में।

कहीं ऐसा भी कहा है—

चित्रकूट में रमिरहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर विपदा पड़ति है सो आवत एहि देश॥

अब देखिये राम स्वयबर के रचइता स्व० श्री रीवानरेश महाराज रघुराज सिंह जो ने थोड़े ही शब्दों में कैसा सुन्दर भाव प्रगट किया है।

बसे विचित्र चित्रकूट हि पुनि परन कुटी रचि नीकी
लह्यो महा सुख सहित लषण सिय अवधपुरी भई फीकी
राम विरह बिलखत आधी निशि भूपति तज्यो शरीरा
केकयपुर ते भरत बोलायो गुरु बशिष्ट मति धीरा॥

समुझायो बहु राज करन को भरत कियो नहिं राज।
चल्यौ चित्रकूट हिं सबको लै बसत जहां रघुराज।

आचार्य महाकवि केशव ने अपनी रामचन्द्रिका में चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्द्रयत का वर्णन कितनी सरस भाषा में किया है।

(छंद)

बहुँ वाग तड़ाग तंरगिन तीर तमाल की छांह विलोकि भली।
घटिका यह वैठत है सुख पाय बिछाय जहां कुस कांस थली॥
मग को श्रम श्रीमती दूर करै सिय को शुभ संभल अंचल सो।
श्रम तेऊं हरै तिनको कहि केशव चंचल चारु दृंग चलसो॥
मारग मो रघुनाथ जू, दुख सुख सव ही देत।
चित्रकूट परवत गये, सोदर सिया समेत।

— — —

श्री बिहारी लाल जी विश्वकर्मा (कौतुक) जी भी चित्रकूट को न भूले जिन्होंने कौशलेन्द्र-कौतुक नाम काव्य में चित्रकूट का वर्णन किया है :—

कविता :—

विमल विशाल सुखदायक सकल काल,
साधक प्रसिद्ध सिद्ध सेवक सकल है।
सरस सुहावनों नसावनों त्रिबिध ताप,
मन्दाकिनि तीर रम्य जित अचल है॥
बिविध प्रकार बेलि बिटप विहंग मृग,
"कौतुक" त्यों विपुल प्रसन्न फल-दल है।
बन्धु सिय सहित सदैव रहिबे के योग्य,
परम पवित्र नाथ, चित्रकूट थल है।

कवित्त

परम उदार थल संतन को,
प्रगट प्रभाव भाव बंधन को छूट है॥

ज्ञान को निधान परमानन्द की खान यहाँ ।।
राजत विराग सदा अटल अटूट है ।
साधकन सिद्धि देत, सुजन समृद्धि देत,
भुक्ति माने की मचाई मानो लूट है ।
सद्गुन वान लघु बन्धु सों कहत राम,
परम पवित्र ये विचित्र चित्रकूट है ।।

आचार्य महाकवि केशव जी ने अपनी रामचन्द्रिका में चित्रकूट के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कितनी सरस भाषा में किया है ।

बहु बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छाहँ विलोकि भली ।
घटिका इकं बैठत हैं सुख पाय, बिछाय तहाँ कुस काँस थली ।।
मग को श्रम श्रीपती दूर करैं सिय को शुभ बल्का अंचल सो ।
श्रम तेऊ हरै तिन को कहि 'केशव' चंचल चारु दृगचल सो ।।

दोहा :—

मारग यों रघुनाथ जु, दुख सुख सब ही देत ।
चित्रकूट परबत गये, सोदर सिया समेत ।।

राम स्वयम्वर के रचयिता रीवाँ नरेश महराज श्री रघुराज सिंह जी ने अधिक न कह कर थोड़े ही में चित्रकूट का वर्णन किया है ।

बसे विचित्र चित्रकूटहिपुनिपरनकुटी रचि नीकी ।
लह्यो महा सुख सहित लषण सिय अवध पुरी भै फीकी ।
राम बिरह बिलखत आधी निशि भूपति तज्यो शरीरा ।
केकयपुर ते भरत बोलायो गुरु बशिष्ट मतिधीरा ।
समुझायो बहु राज करन को भरत कियो नहीं राज ।
चल्यो चित्रकूटहि सबको लै बसत जहाँ रघुराज ।

राष्ट्रकवि श्री मैथिली शरण जी गुप्त ने 'साकेत' में चित्रकूट का वर्णन कई पक्तियों में किया है किन्तु लेख अधिक लम्बा न हो, इसलिये थोड़े ही में उनके भाव प्रगट कर दिये जाते हैं ।

चल, चपल कलम, निज चित्रकूट चल देखें,
प्रभु—चरण चिन्ह पर सफल भाल-लिपि लेखें।
सम्प्रति साकेत समान वही है प्यारा।
सर्वदा हमारे संग स्वदेश हमारा। वि० १५६
क्या ही विचित्रता चित्रकूट ने पाई।
सम्पूर्ण अयोध्या जिसे खोजतो आई।

श्री प्रसाद जी का चित्रकूट-वर्णन

उदित कुमुदिनी—नाथ हुए प्राची में ऐसे।
सुधा—कलश रत्नाकर से उठता हो जैसे॥
धीरे-धीरे उठे नई आशा से मन में।
क्रीड़ा करने लगे स्वच्छ स्वच्छन्द गगन में।
चित्रकूट भी चित्र-लिखा सा देख रहा था॥
मंदाकिनी-तरंग उसी से खेल रहा था।
स्फटिक—शिला—आसीन राम—वैदेही ऐसे।
निर्मल सर में नील कमल-नलिनी हों जैसे॥
शान्त नदी का स्त्रोत बिछा था अति सुखकारी।
कमल—कली का नृत्य हो रहा था मनहारी॥
ऊंचे शिखर मैदान; पर्ण कुटीर सब निस्तब्ध थे।
सब सो रहे, जैसे अभागे के दुखद प्रारब्ध थे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी-साहित्य क्षेत्रमें भी 'चित्रकूट, ने अपना विशिष्ट स्थान प्राप्त कर लिया है। अतः यहाँ तो हमने कुछ पुराने और नये प्रमुख कवियों की चुनी रचनाओं के कुछ अंश प्रस्तुत किए हैं। यदि अन्वेषण किया जाय तो चित्रकूट सम्बन्धी व्यापक वर्णन उपलब्ध हो सकता है।

हिन्दी-प्रभा की ओर से आभार-स्वीकार

चरितं रघुनाथस्य, शतकोटि प्रविस्तरं।
एकैकमक्षरं पुंसां, महापातक नाशनम् ॥

यों तो भगवान रानचन्द्र के चरित्रों का बहुत बड़ा बिस्तार है, किन्तु उसमें से किसी के पढ़ने-सुनने और मनन करने से मनुष्य के पंच महापातकों का नाश होता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने श्रीरामचरित-मानस लिखकर संसार में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के सनातनत्व को सिद्ध किया। विगत ४०० वर्षों में इस अलौकिक ग्रन्थ ने मनुष्य जाति को उसके जन्म और जीवन को सार्थक बनाने का मार्ग-प्रदर्शन किया है।

अभिमन्यु-पुस्तकालय ने अब तक हिन्दी-प्रभा के कई महत्वपूर्ण विशेषांक प्रकाशित किये हैं—यह मानस-चतुश्शती की समाप्ति के अवसर पर उसका 'मानसांक' भी निकालने का उत्साह दरसाया है। अतः उसके सभी संयोजक, मन्त्री एवं सभापति धन्यवाद के पात्र हैं क्यों कि उन लोगों ने इसके लिये हार्दिक प्रयत्न किया है।

इस 'मानसांक' को सफल बनाने में जिन लेखक महानुभावों ने अपने विवेक पूर्ण तथा लोकोपयोगी लेखादि प्रदान किये—उनका भी आभार स्वीकार करते अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। क्योंकि उनकी कृपा के बिना इस ज्ञानयज्ञ की पूर्णाहुति नहीं हो सकती थी।

पुस्तकालय-समिति ने गतवर्ष की भाँति इस वर्ष भी 'मानस-सत्संग-सप्ताह' का आयोजन किया है जो श्रीरामनवमी सोमवार १ अप्रैल से रविवार ७ अप्रैल तक नियमानुकूल पुस्तकालय-भवन में रात्रि में ७।। से ९ बजे तक चलता रहेगा। इसी दिन 'हिन्दी प्रभा के मानसांक' का उद्घाटन भी होगा। उसी दिन से एक सप्ताह तक - मानस-पूजन-आरती, भजन-कीर्तन और विख्यात विद्वानों तथा व्यासों के भाषण और प्रवचन भी होते रहेंगे। किमधिकम्।

—विनीत सम्पादक

"खण्डहरों के देश में"

ले०---श्री बनारसी लाल पांडेय 'आर्य'

भूमिका लेखक : पं० लालधर त्रिपाठी 'प्रवासी'

.........."विद्वान लेखक ने इस पुस्तक में जहाँ जैसा देखा परखा, समझा, उसे भलीभाँति चिन्तन मनन तथा अन्तर्चक्षु से देखनेका भरपूर प्रयास किया है। इतिहास, संस्कृति एवं धार्मिक हर दिशा से पुस्तक की उपयोगिता विद्यार्थी पाठक एवं पुस्तकालयों के लिए संग्रहणीय है।

मूल्य मात्र आठ रुपये

प्रकाशक—हिन्दी साहित्य मन्दिर : वाराणसी—१

काश्मीर-दर्शन

लेखक---श्री बनारसी लाल 'आर्य'

काश्मीर भारत का स्वर्ग है। इसकी महत्ता धार्मिक राजनैतिक वंए ऐतिहासिकतथा सामाजिक अपने ढंगका महत्वपूर्णस्थान रखता है। लेखक ने बड़े ही रोचक एवं यथार्थ दृष्टिकोण अपनाकर पुस्तक की उपयोगिता को बढ़ा दिया है। प्रकाशक ने भी मनोरम चित्रों द्वारा काश्मीर की सही रेखाओं को स्पष्ट कर दिया है। पूरी पुस्तक पढ़े बगैर छोड़ने को जी न चाहेगा।

मूल्य मात्र २)

बलवन्त सिंह और काशी का अतीत
शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है।

लेखक—श्री बनारसी लाल पांडेय 'आर्य'

काशीनरेश महराजा बलवन्त सिंह का जीवन और काशी का इतिहास। उनका वीरता पूर्ण जीवन और काशी की ऐतिहासिक घटनाओं का सही वर्णन, जो कि अनुपलब्ध था, लेखक ने उसे ढूंढ़कर स्पष्ट कर लिपिवद्ध कर दिया है। घटनाएं रोचक हैं तथा काशी के अतीत का वैभव प्राप्त कर पाठक गौरव का अनुभव कर। पुस्तक अवश्य पढ़ें तथा मित्रों को भी पढ़ायें। ऐसा भी लोगों का कहना है कि महाराजा वलवन्त सिंह पर हिन्दी में यही पहली और प्रामाणिक पुस्तक है।

मूल्य मात्र ५)



अभिमन्यु पुस्तकालय में उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री

माननीय पं० कमलापति त्रिपाठी द्वारा

वाराणसी स्वतन्त्रता संग्राम सैनिक संघ के कार्यालय

उद्‌घाटन समारोह

में

खड़े हुए श्री शचिन्द्रनाथ बख्शी धन्यवाद भाषण करते हुए

बगल में संघ के मंत्री श्री मन्नूलाल जी स्वतंत्र



उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री माननीय पं० कमलापति त्रिपाठी द्वारा
४ मार्च १९७३ को अभिमन्यु-पुस्तकालय, वाराणसी में
स्व० डा० सम्पूर्णानिन्द एवं म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री का
चित्र अनावरण करते ममय, पीछे खड़े हुए पुस्तकालय
के अध्यक्ष श्री गोपाल लाल बर्मन

उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री पं० कमलापति त्रिपाठी द्वारा

४ मार्च १९७४ को पुस्तकालय में

डा० सम्पूर्णानन्द एवं म० म० पं० शिवकुमार शास्त्री के चित्र
अनावरण समारोह के अवसर पर पुस्तकालय के संस्थापक
श्री बनारसी लाल जी आर्य) द्वारा धन्यवाद
भाषण करते समय



२ अक्टूबर १९७२ को पुस्तकालय द्वारा
सिद्धान्त–शिरोमणि श्री पं० चन्द्रपाल शास्त्री के
अभिनन्दन समारोह
के
अवसर पर अभिनन्दन भेट करते हुये मंत्री श्री अलखनाथ जी तथा
संयोजक श्री डा० हरेन्द्रनाथ वर्मा खड़े हुये



पुस्तकालय के सहयोगी सदस्य
श्री रमाशंकर जी यादव



श्री दर्शनानन्द जी शास्त्री
पृष्ठ १६ पर लेख पढ़ें